अप्रैल-जून, 2015
ISSN:2320-7736

विज्ञान गरिमा सिंधु

अंक: 93

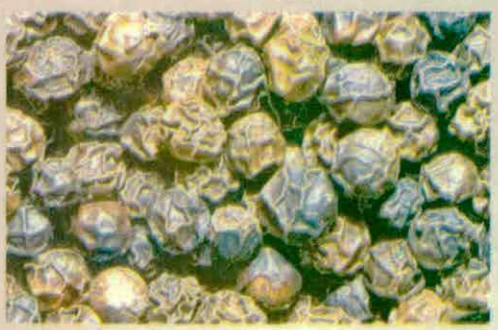

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development (Department of Higher Education)
Government of India

(ISSN : 2320-7736)

विज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका)

अंक - 93
(अप्रैल–जून, 2015)

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

अध्यक्ष की ओर से....

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की त्रैमासिक विज्ञान–पत्रिका 'विज्ञान गरिमा सिंधु का 93 वाँ अंक विद्वान पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। पाठकों को विदित है कि यह पत्रिका ज्ञान-विज्ञान की अद्यतन सामग्री प्रस्तुत करने के साथ–साथ मानक तकनीकी शब्दावली और उसके प्रयोग व प्रसार के लक्ष्य के प्रति भी प्रतिबद्ध है। इस अंक में आजकल के बहुचर्चित विषय, आनुवंशिकतः आपरिवर्तित (जेनेटिकली मॉडिफाइड) पौधें जिन्हें पारजीनी पौधें भी कहते हैं, पर प्रकाश डाला गया है। वनस्पति-विज्ञान को न्याय वैद्यक आयुर्विज्ञान से जोड़ने की रोचक जानकारी को अपने लेख में प्रो. मुकुलचंद पांडेय ने प्रस्तुत किया है। प्रकृति के क्षेत्र में जलप्रदूषण, वृक्षों का महत्व, तथा भारत की घटती जैव विविधता पर प्रस्तुत लेख हमें गहन चिंतन के लिए विवश करता है। इसी प्रकार कालीमिर्च और ईसबगोल के विषय में भी पाठकों की उत्सुकता को संतुष्ट करने का प्रयास किया गया है। विज्ञान के स्रोत को भारत के समृद्ध अतीत से जोड़ते हुए दो लेख भी द्रष्टव्य हैं– 'प्राचीन भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की उपलब्धियाँ' तथा 'वृक्षः मानवता के परम मित्र'। 'विज्ञान' मासिक इलाहाबाद के पूर्व संपादक डॉ. प्रेमचंद श्रीवास्तव ने विज्ञान समाचार के रूप में हमें बहुमूल्य तथ्यों से अवगत कराया है जिसके लिए हम उनके आभारी हैं।

विज्ञान की इस रोचक एवं सारगर्भित पत्रिका को अधिक उपयोगी बनाने के लिए हमें लेखकों–पाठकों के अनवरत सहयोग की अपेक्षा है। मैं इस पत्रिका के प्रकाशन को नियमित बनाए रखने के लिए संपादक डॉ. अशोक सेलवटकर की सराहना करता हूँ, जो अपने अन्य विविध कार्यक्रमों में व्यस्तता के बावजूद इस कार्य का निर्वाह निरंतर करते आ रहे हैं।

पत्रिका के विषय में आपके बहुमूल्य सुझावों तथा प्रतिक्रिया का स्वागत है।

नन्द किशोर पाण्डेय

(प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय)
प्रधान संपादक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

दिसंबर, 2015

'विज्ञान गरिमा सिंधु' एक त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका है। पत्रिका **का उद्देश्य है**– हिंदी माध्यम से विश्वविद्यालयी व अन्य छात्रों के लिए विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय **तथा संपूरक साहित्य** की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध–लेख, तकनीकी निबंध, शब्द–संग्रह, शब्दावली–चर्चा, विज्ञान–**कथाएं**, **विज्ञान**–समाचार, पुस्तक–समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखकों के लिए निर्देश

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी **से संबंधित** होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/ महाविद्यालय के छात्र **आसानी से समझ सकें**।
4. लेख लगभग 2000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ या **कागज के एक ओर** स्पष्ट हस्तलिखित लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में **अवश्य भेजें**। लेख के आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग करें तथा प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का **मूल अंग्रेजी पर्याय** भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
6. श्वेत–श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं।
7. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
8. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है। **अस्वीकृत** लेख वापस नहीं भेजे जाएंगे। अतः लेखक कृपया टिकट–लगा लिफाफा साथ न भेजें।
9. प्रकाशित लेखों के लिए मानदेय की दर 250/– रुपए प्रति हजार **शब्द है**, तथा न्यूनतम 150 रुपए और अधिकतम राशि 1000 रुपय है। भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
10. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजेः
    डॉ० अशोक एन. सेलवटकर
    संपादक, विज्ञान गरिमा सिंधु
    वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दवली आयोग
    पश्चिमी खंड – 7, रामकृष्णपुरम्
    नई दिल्ली – 110066
11. अपने लेख E-mail द्वारा तथा CD में भी (फॉन्ट के साथ) भेज सकते है।
12. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

सदस्यता शुल्कः	भारतीय मुद्रा	विदेशी मद्रा	
सामान्य ग्राहकों/सस्थाओं के लिए प्रति अंक	रु. 14.00	**पौंड 1.64**	**डॉलर 4.84**
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	**पौंड 5.83**	**डॉलर 18.00**
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	रु. 8.00	**पौंड 0.93**	**डॉलर 10.80**
वार्षिक चंदा	रु. 30.00	**पौंड 3.50**	**डॉलर 2.88**

वेबसाइटः **www.cstt.nic.in**
कापीराइट © 2015
प्रकाशकः
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार, पश्चिमी खंड–7
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली – 110066

बिक्री हेतु पत्र–व्यवहार का पताः
वैज्ञानिक अधिकारी, **बिक्री** एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी **शब्दावली**
आयोग, पश्चिमी खंड–7,
रामकृष्णपुरम्, सेक्टर–1,
नई दिल्ली– 110066
दूरभाष– (011) 26105211
फैक्स – (011) 26102882

बिक्री स्थानः
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स, दिल्ली–110054
E-mail: vgs.cstt@gmail.com

विज्ञान गरिमा सिंधु

हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन की स्तरीय त्रैमासिकी

अंक 93, अप्रैल–जून 2015 (ISSN : 2320-7736)

प्रधान संपादक
प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय
अध्यक्ष

संपादक
डॉ. अशोक सेलवटकर

सहयोग
श्री उमाकांत खुबालकर
श्री वीरसिंह आर्य

प्रकाशन–मुद्रण व्यवस्था
डॉ. पी. एन. शुक्ल
सहायक निदेशक

श्री गब्बर सिंह
सहायक

बिक्री एवं वितरण
इंजी. मोहन लाल मीणा

संपर्क सूत्र
संपादक

"विज्ञान गरिमा सिंधु"
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड-7
आर. के. पुरम,
नई दिल्ली-110066

अनुक्रम **पृ. सं.**

1.	आनुवंशिकतः आपरिवर्तित पौधे	नवनीत कुमार गुप्ता	01
2.	न्यायिक विज्ञान के प्रतिमान सूक्ष्म वनस्पतियों के निशान	प्रो मुकुलचंद पांडेय	04
3.	जैव विविधताओ की संरक्षक नम भूमि तथा जलपक्षी	श्री जगनारायण	09
4.	ग्रामीण क्षेत्रों मे जल प्रदूषण	डॉ० जितेंद्र कुमार सिंह	12
5.	गुणकारी काली मिर्च	डॉ० दीपक कोहली	18
6.	प्राचीन भारत कें विज्ञान और प्रौद्यागिकी	प्रो. राजन कुमार तिवारी	21
7.	मादक व नशीले पदार्थ और हमारा स्वास्थ	प्रो. दीपक कोहली	26
8.	वृक्षः मानवता के परम मित्र	डॉ० मधु ज्योत्सना	31
9.	भारत की घटती जैव विविधता	डॉ० नरेश कुमार	38
10.	जैविक खेती की ओर बढ़ता रुझान	डॉ० वीरेंद्र कुमार	43
11.	विज्ञान–समाचार	प्रेमचंद श्रीवास्तव	51
☐	इस अंक के लेखक		58
☐	आयोग के प्रकाशन		
	ग्राहक फार्म		
☐	बिक्री संबंधी नियम		

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों, अभिव्यक्त विचारों आदि से वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय या संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। यह पत्रिका वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रचार–प्रसार के साथ हिंदी में वैज्ञानिक लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए प्रकाशित की जाती है।

1

आनुवंशिकतः आपरिवर्तित पौधे

नवनीत कुमार गुप्ता

आजकल वैज्ञानिक आनुवंशिक इंजीनियर के द्वारा किसी भी जीव या पौधों के जीन को दूसरे पौधों में डाल कर एक नई फसल जाति विकसित कर सकते है। मतलब यह कि अब दो अलग–अलग जातियों में भी संकरण किया जा रहा है। वैसे प्रकृति में जीनों का जोड़–तोड़ चलता रहता है। इधर के जीन उधर और उधर के इधर। पर प्रकृति में यह बड़ी धीमी प्रक्रिया है, कई हजारों लाखों वर्षो में ये बदलाव आते है। क्योंकि प्रकृति पूरी तरह से वरण व विकास प्रक्रिया से गुजरकर ही किसी पौधे या जानवर या सूक्ष्मजीव को पनपने देती है, वरना उसे खत्म कर देती है। लेकिन आज आनुवंशिक इंजीनियर की मदद से जीनों को एक जाति से दूसरी जाति में डाला जा रहा है। इस प्रकार प्राप्त फसलों को पारजीनी फसले यानि आनुवंशिकतः आपरिवर्तित पौधे अर्थात जेनेटिकली परिवर्तित (genteically modified) फसल कहा जाता है।

ऐसी ही एक फसल है बीटी कपास। वैसे काफी समय तक बीटी कपास चर्चा का विषय बना रहा। असल में बीटी, बैसिलस थुरेंजिनेसिस नामक जीवाणु का छोटा नाम है। इन जीवाणुओं के जहर से कपास की फसल को नुकसान पहुंचाने वाला एक जीव अमेरिकन सुंडी मर जाता है। यही कारण था कि वैज्ञानिकों ने बैसिलस थुरेंजिनेसिस का वह जीन जो इस विष को बनाता है, कपास के पौधे में डाल कर बीटी कपास तैयार किया। इससे अब सुंडी को मारने के लिए दवाई का छिड़काव करने की जरूरत ही नहीं रही । वह अपने आप ही मर जाता है।

बीटी कपास को सबसे पहले अमेरिका में 1996 में उगाया गया। उस समय लगभग 20,000 किसानों ने इस खेतों मे लगाया। 2002 में कुल कपास बुआई क्षेत्र के 0.3 क्षेत्र में बीटी कपास लगाया था। वहीं सन् 2007 में लगभग 38,00,000 किसानों ने बीटी कपॉस लगाया और इसका क्षेत्र कुल कपास क्षेत्र का 66 प्रतिशत था। इस दौरान आरंभ में 6 सालों में बीटी कपॉस उगाने वाले किसानों की संख्या में 190 गुना और बीटी कपास के क्षेत्र में 210 गुना वृद्धि हुई। उपज की बात की जाए तो जहां सन् 2002 में भारत में कपास की

उपज 308 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर थीं वहीं सन् 2007 में यह बढ़कर 560 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर हो गई थीं।

लेकिन अनेक स्थानों पर देखा गया है कि बीटी कपास शुरू में अच्छी फसल देता है, कीटनाशी भी कम लगते हैं, पर धीरे–धीरे सुंडी में भी प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो जाती है और वह पहले से भी खतरनाक हो जाती है। ऐसा पाया गया है कि जिस सुंडी में प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो गई वह उस विष से अपनी प्रोटीन की आवश्यकताओं को पूरा कर लेता है और फिर वे ज्यादा मोटी–तगड़ी हो जाती है, यानी ज्यादा विनाशकारी। इस प्रकार कई क्षेत्रों में बीटी कपास की फसल घाटे का सौदा रही।

इसके अलावा पर्यावरणविदों की राय में बीटी कपास से पारिस्थितिक तंत्र को नुकसान हो सकता है। उनके अनुसार उपजाऊ मिट्टी में लाखों की संख्या में जीवाणु, कवक, फफूंद आदि होते है। अब यह बीटी कपास का जहर जड़ों से मिट्टी में आ कर उसे दूषित कर सकता है, जिससे हमारे काम के जीवाणु भी खत्म हो सकते हैं। अब अगर जीवाणु खत्म हो जाएगें तो पौधों को नाइट्रोजन, फॉस्फोरस कौन पहुंचाएगा? कवक खत्म तो कहां से आएगी जैविक खाद। इसलिए बीटी कपास को लेकर विवाद उत्पन्न हो रहे है।

दुनिया में जीएसओं के खतरों पर विचार किए बगैर, करीब 90 लाख हेक्टर में ये जीएम फसलें उगाई जा रही है। इसका एक सबसे बड़ा खतरा है, पार–परागण (cross palination) का मतलब अगर कुछ खरपतवार आदि में इन फसलों के जीन परागण, आदि के द्वारा चले गए तो सुपर यानी महा खरपतवार बन सकते हैं, जिन पर खरपतवारनाशियों का असर ही नहीं होगा और न उनके प्राकृतिक भक्षी उन्हें कुछ नुकसान पहुंचा पाएंगे और फिर तो पूरी खाद्य सुरक्षा ही खतरे में पड़ जाएंगी।

इसी तरह जिन फसलों को आनुवंशिकतः आपरिवर्तित करके कीटरोधी बनाया गया है, उनसे ऐसे कीट–पतंगों की जातियों के खत्म होने का खतरा उत्पन्न हो गया है, जो हमारे लिए लाभदायक है।

इस प्रकार जीन आपरिवर्तित फसलों को लेकर वैज्ञानिकों में भी मतभेद हैं, कुछ वैज्ञानिक इसे बढ़ती आबादी की भूख की समस्या के हल के रूप में देखते हैं, तो कुछ वैज्ञानिक जीनांतरित पौधों को ही खाद्य सुरक्षा के लिए खतरा मानते हैं।

आनुवशिक इंजीनियरींग के कई फायदे हैं। जैसे कुछ सालों पहले पूसा के वैज्ञानिक ने रामदाने का जीन निकालकर आलू में डाल दिया, जिससे आलू में प्रोटीन की मात्रा बढ़ गई। अब ऐसे अनुसंधान से विकासशील या गरीब देशों में होने वाली कुपोषण की समस्या से छुटकारा मिल सकता है। इसी तरह सोयाबीन की ऐसी किस्म तैयार की गई है, जो खरपतवार नाशियों को सहन कर लेती है। इसी प्रकार मक्का की भी ऐसी किस्म तैयार की गई हैं, जिसमें कीड़ा नहीं लगता है। इसी प्रकार

अब अगर हम धान की ऐसी किस्म विकसित कर लें जो गेहूं जितना पानी ही उपयोग करे, तो पानी बहुत बचत होगी।

वैसे आनुवंशिक इंजीनियरिंग की तकनीक में कोई खराबी नहीं है। बस इससे पर्यावरण पर पड़ने वाले खतरों की ठीक से जांच की जाने की जरूरत है। हां, और इसके लिए किसी भी बीज को बाजार में बेचने से पहले, उसकी सही जांच और कई वर्षो तक उसका खेत में परीक्षण किया जाना जरूरी है।

नई प्रगति, शोध व तकनीकों के साथ, नई–नई जिम्मेदारियां भी आती हैं, जिनका सही पालन करना जरूरी है। हम अगर मानक सभ्यता और मानव समाज के कल्याण को ध्यान में रखकर शोध करेंगे तो नतीजे अच्छे ही निकलेंगे।

○○○

2

न्यायिक विज्ञान के प्रतिमानः सूक्ष्म–वनस्पतियों के निशान

प्रो0 मुकुल चंद पांडेय

भौतिकता के दौर में आपराधिक घटनाओं का भूचाल सा आ गया है। समाचार पत्रों में प्रकाशित सनसनीखेज खबरें रोमांचित कर देती हैं। आज जैसे–जैसे विज्ञान और भौतिक संसाधन विकसित होते जा रहे हैं, वैसे–वैसे सामाजिक संविन्यास बदलता जा रहा है। भौतिक रूप से संपन्न इस समाज ने नए–नए तरीकों व तकनीक का उपयोग आपराधिक कृत्यों में भी किया जा रहा है।

किसी भी आपराधिक घटना के सुलझाने, विवेचना या अपराधियों को दंड दिलाने में पुलिस विभाग के साथ–साथ न्यायिक विज्ञान (फॉरेंसिक साइंस) के विशेषज्ञ भी शामिल होते हैं। ये विशेषज्ञ घटना की वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जांचकर घटनाक्रम में प्रयोग की गई वस्तुओं व तकनीक का विधिवत् विश्लेषण पर अपराधियों की पहचान करते हैं। न्यायिक प्रक्रिया में इन विशेषज्ञों के महत्व को दृष्टिगत रखते हुए अब देश के अनेक विश्वद्यिालयों में स्नातक, स्नातकोत्तर तथा शोध स्तर पर इस विज्ञान का अध्ययन आरंभ हो चुका है। इस समय देश में न्यायिक विज्ञान की पाँच केंद्रीय तथा राज्यस्तर पर अनेक प्रयोगशालाएं स्थापित की जा चुकी हैं। इन प्रयोशालाओं में विज्ञान की आठ शाखाओं के विशेषज्ञों की नियुक्ति की जाती हैं। ये विषय है : भौतिक, रसायन, जीवविज्ञान, रुधिर–विज्ञान, प्रक्षेपिकी (बैलेस्टिक विज्ञान), आविष विज्ञान, (toxicology) आदि।

अन्य अनेक साक्ष्यों के साथ–साथ आपराधिक स्थल से प्राप्त होने वाले पादपों (वनस्पतियों) साक्ष्यों की भी गहन चर्चा करना प्रासंगिक होता है। अनेक प्रकार के उलझे हुए घटनाक्रम को साक्ष्य विज्ञानियों ने सुलझाया व अपराधियों को सजा दिलाई गई। इन्हें पादप वैज्ञानिक, न्यायिक जीवविज्ञानी (फोरेंसिक बायोलाजिस्ट) कहते हैं। इन्हे घटना स्थल से प्राप्त पशु, पक्षी, मानव या पादप–साक्ष्यों अथवा उनके अवयवों का विश्लेषण करना होता है। न्याय आयुर्विज्ञान के संगत साक्ष्यों को काफी समय तक महत्व नहीं दिया गया क्योंकि इस क्षेत्र में कार्य करने वाले वैज्ञानिक अधिकतर प्राणिविज्ञान से संबंधित

होते थे। परंतु की न्यायिक विज्ञान की प्रयोगशालाओं में पादप विज्ञानियों की बढ़ती उपस्थिति व बढ़ती तकनीकी सक्षमता ने पादप साक्ष्यों की महत्ता को स्वीकार किया है। वर्ष 2003 की न्यायिक विज्ञान के हैंडबुक में घटना स्थल से प्राप्त पादप साक्ष्यों जैसे – परागकण, बीजाणु, लकड़ी (काष्ठ), रेशे, रूई, बीज, फल, शैवाल तथा घटनास्थल के आस–पास की अन्य वनस्पतियों को महत्वपूर्ण साक्ष्य के रूप में सम्मिलित किया गया है। न्यायालय द्वारा इन साक्ष्यों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है:

1. अदृश्य साक्ष्य (सूक्ष्मदर्शीय साक्ष्य): ये आकार में अति सूक्ष्म होते हैं तथा इनको देखने के लिए सूक्ष्मदर्शी यंत्र (माइक्रोस्कोप) की आवश्यकता होती है, जैसे – शैवाल, कवक (फफूंद), बीजाणु परागकण, इत्यादि। किसी भी घटना–स्थल से अपराधी के बारे में या संदिग्ध व्यक्ति के वस्त्रों, बालों इत्यादि से प्राप्त के साक्ष्य घटना तथा घटनास्थल के विषय में अत्यंत गूढ़ संकेत प्रदान करते हैं।

2. दृश्य साक्ष्य (स्थलक्षशीय – मैक्रोस्कोपिक साक्ष्य): ये बड़े आकार के होते हैं जिनको बिना किसी आवर्धन के नेत्रों द्वारा ही देखा जा सकता है, जैसे – पत्ती, फल, बीज, लकड़ी, रूई, रेशे, पौधों के कांटे, आदि।

अदृश्य साक्ष्य

(क) शैवाल या काई:

पानी में पाए जाने वाले हरे रंग के विशिष्ट पौधों को शैवाल कहा जाता है। जन भाषा में इसके लिए 'काई' कहा जाता है। वनस्पति विज्ञान की दृष्टि से इनके विशिष्ट गुण–धर्मों यथा संरचना, जनन व प्राप्ति–स्थान आदि के आधार पर इनको 11 वर्गों में बांटा गया है। समुद्री जल में इनकी अलग जातियाँ मिलती हैं। इसी प्रकार बहते मीठे पानी व स्थिर रुके हुए मीठे जल में इनकी अलग–अलग जातियाँ पाई जाती हैं। प्रदूषित पानी में भी प्रदूषण की प्रकृति व मात्रा के अनुसार, इनकी जातियाँ मिलती हैं। इस प्रकार प्रत्येक प्राप्ति–स्थल के गुण–धर्मों या पानी, तापमान, व भोज्य पदार्थों के अनुसार स्थान–विशेष पर विभिन्न जातियाँ पाई जाती हैं। अतः स्पष्ट है कि किसी भी तालाब, नदी, पोखर, झील या समुद्र के स्थान–विशेष का जल–जगत् अति विशिष्ट होता है। न्यायिक विज्ञान के दृष्टिकोण से यदि पानी के भीतर कोई शव मिलता है तो उसकी दो संभावनाएँ बनती हैं:

1. मृत्यु का कारण पानी में डूबना है: इस दशा में शव के पेट व फेफड़ों में भरे पानी का विश्लेषण किया जाता है, यदि वहाँ के पानी और जलीय वातावरण के पानी में एक जैसी वनस्पतियाँ (शैवाल, डायटम) मिलती हैं, तो मृत्यु डूबने से हुई है।

2. हत्या के उपरांत शव को पानी में डाला गया: इस दशा में सांस बंद होने के कारण पानी फेफड़ों व पेट में नहीं पहुँच पाता है, जो कि स्पष्टतः दर्शाता है कि शव को मृत्यु के पश्चात् पानी में फेंक दिया गया है।

(ख) कवक (फंगस)

सामान्य भाषा में फफूंदी के नाम से जाने वाले पौधे बिना हरीतिमा के होते हैं। ये किसी भी वातावरण में उग सकते हैं, परंतु कुछ कवक किसी विशिष्ट वातावरण में ही उगते हैं। कभी–कभी किसी आपराधिक घटना से गुमराह करने के लिए शव को घटनास्थल से बहुत दूर फेंक दिया जाता है। इस स्थिति में उस पर उगने वाले फफूंद व उनके बीजाणु घटनास्थल का सत्य साक्ष्य देकर अपराध का संकेत प्रदान करते हैं।

(ग) परागकण

फूलों में पाए जाने वाले जननांग से अति सूक्ष्म गोलाकार अथवा अंडाकार कण बहुत बड़ी संख्या में उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक जाति के पौधे का परागकण, आकार एवं बाह्यमित्ति संरचना दूसरी जाति से एकदम अलग होती है। बाह्यभित्ति अत्यंत कठोर व एक विशिष्ट प्रतिरूप (पैटर्न) की होती है जिससे जाति–विशेष की पहचान की जा सकती है। कठोर बाह्यभित्ति के कारण परागकण कुछ वर्षों से लेकर हजारों वर्षों तक सुरक्षित रह सकते हैं। अपने अति सूक्ष्म आकार के कारण ये हवा भी मौजूद रहते हैं तथा किसी का ध्यान इनकी ओर नहीं जाता है। ये आपराधिक घटना के मूक गवाह के रूप में उपस्थित रहते हैं। ये घटना तथा मौसम सहित भौगोलिक स्थिति के विषय में भी जानकारी देते हैं।

उदाहरणार्थ न्यूजीलैंड में हुए एक बलात्कार के मामले में साक्ष्य के रूप में दोषी व्यक्ति के वस्त्रों में चिपका हुआ पौधे का परागकण उसके आपराधिक दृष्कृत्य का साक्षी बना तथा उसको 8 वर्षों की सजा दी गई।

दृष्य साक्ष्य

(क) फल: अनेक पादप जातियों के फल का बाह्य आवरण कंटीले हुकनुमा संरचनाओं से घिरा होता है जैसे गोखरू, लटजीरा, रेडी आदि। ये संरचनाएं इन फूलों के एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रकीर्णन में मदद करती हैं। संयोगवश संदिग्ध अपराधी व्यक्ति के बालों, कपड़ों में फंसकर एक ठोस सबूत पेश करते हैं। उदाहरणार्थ कनाडा के ओहियो में घटित एक घटना में 1997 में 2 बच्चों के गुम होने की सूचना उनके सौतेले पिता ने दर्ज कराई कुछ समय बाद दोनों बच्चों का शव एक स्थानी कब्रिस्तान के बाहर दफन मिला। वहाँ पर **जीयम तथा गैलियम** (वानस्पतिक नाम) के पेड़ लगे थे। इनके बीज व फलों में रोयेदार संरचनाएं पाई जाती हैं। पिता को संदिग्ध मानकर घर की तलाशी में बरामद उसके कपड़ों में ये फल व बीज पाए गए। कपड़ों को न्यायालय में प्रस्तुत किया गया और पिता ने अपना अपराध कबूल किया।

(ख) बीज: घटनास्थल से प्राप्त कांटेदार बीजों के साथ–साथ भोजन के साथ ग्रहण किए

गए बीज भी घटनाओं की गुत्थी सुलझाते हैं। प्रत्येक बीज का बाह्य आकार अनूठा व दूसरों से अलग होता है जिससे उसके पौधे को पहचाना जा सकता है। कुछ वनस्पतियों के बीजों में गुण विद्यमान होता है जिससे ये आहारनाल के पाचक रसायनों से अप्रभावित रहते हैं। इसके लिए मानवबलि से जुड़ा एक दिलचस्प उदाहारण वैज्ञानिक ने प्रस्तुत कर चकित कर दिया। सितंबर 2001 में लंदन की टेम्स नदी में एक बालक का सिररहित शव प्राप्त हुआ। इसकी शिनाख्त नहीं हो पाई। उसके पेट से **एलडर** नामक पौधे का परागकण मिट्टी की गोलियाँ जिसपर सोना चढ़ा था और एक विषैली बीज मिला जिससे पता चला कि इसे बच्चों को जहर के साथ देकर मारने के बाद काट कर नदी में बहा दिया गया था। अपराधी का सुराग नहीं मिला परंतु मानव तस्करी से जुड़े 21 लोगों को बाद में गिरफ्तार किया गया।

(ग) लकड़ी: ऐसा पाया गया है कि अपराध स्थल पर पेड़ों की डालें व लकड़ी के टुकड़े बरामद होते हैं। प्रत्यक पेड़ की लकड़ी की संरचना अलग किस्म की होती है। वनस्पति विज्ञानी लकड़ी के टुकड़ें से पेड़ की सही जानकारी प्राप्त उसकी भौगोलिक स्थिति को जानकारी अपराधी को तलाशने में महत्वपूर्ण सहयोग कर सकते हैं।

(घ) रेशे: रस्सी या डोरी जिन रेशों से बनती है वे पौधे के तने या पत्तों से प्राप्त होते हैं। हर पौधे में रेशे बनाने वाले ऊतक आकार और संरचना में एकदम अलग होते हैं। अतः अपराधी को साक्ष्य के द्वारा भी घटनास्थल से प्राप्त रेशे या रस्सी से पहचाना जा सकता है।

(ड.) आण्विक साक्ष्य: वर्तमान समय में डी. एन.ए. फिंगर प्रिंटिंग की तकनीक ने वनस्पति साक्ष्यों में ब क्षेत्र को नई दिशा प्रदान कर चमत्कार कर दिखाया है। पौधों की सम्यक् पहचान के लिए उनकी डी.एन.ए जाँच से अनेक मामलों को सुलझाने में सहायता मिली है। एरिजोना में एक युवा महिला की हत्या की शव को रेगिस्तान में दफना दिया गया। घटना स्थल पर एक पेजर पाया गया जिसके मालिक को संदिग्ध माना गया। परंतु उसने बताया कि उसने उस महिला को कुछ देर के लिए अपनी गाड़ी में लिफ्ट दी थी व उसने इस व्यक्ति का पेजर और वॉलेट चुरा लिया था। इस घटना की जांच करने वाले दल के एक सदस्य चार्ल्स वारटन ने घटना स्थल पर फिन **सोनिया माइक्रोफिला** का वृक्ष देखा जिसका तना छिला हुआ था। यह किसी वाहन के टकराने से हुआ था। उन्होंने इस वृक्ष में लगी फली को तोड़ लिया और बागान के पथ का निरीक्षण किया। उसके पथ में भी उसी प्रकार की फली या फूल पाए गए, उन्होंने एरिजोना विश्वविद्यालय के प्रोफेसर टिम हेलन टेजारिस से दोनों फलियों का डी. एन. ए. परीक्षण करवाया, जो एक समान निकला। अतः वारटन ही अपराधी माना गया।

इस घटना से उत्साहित होकर आस्ट्रेलिया के कैनबेरा विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों के किए गए पादप डी. एन. ए. शोध द्वारा घासों के डी. एन. ए. का एक प्रोटोटाइप तंत्र विकसित किया है जिसे आण्विक वर्गीकरण कुंजी कहा गया है। पृथ्वी पर घास हर ओर व सर्वत्र मिलती है। अतः किसी की आपराधिक घटना में आणविक साक्ष्य एक सटीक सबूत माना जाता है।

अपराधों में संलिप्तता में घटना–स्थल पर उपलब्ध वानस्पतिक साक्ष्य की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए। इस दिशा में नए आयाम व प्रतिमान स्थापित करने हेतु अधिकाधिक वनस्पति–विज्ञानियों को प्रशिक्षित किया जाना समीचीन होगा।

○○○

3

जैव विविधताओं की संरक्षक नम भूमि जल पक्षी

जगनारायण

भारत का अपनी असाधारण जैव विविधताओं के लिए सारी दुनिया में विशेष स्थान है। जैव विविधताओं के क्षेत्र में यह एशिया का दूसरा और विश्व का सातवें क्रम का देश है। यहाँ जलीय प्राकृतिक आवासों के संसाधन अत्यंत समृद्ध और विस्तृत है। आज के तमाम विकसित संचार साधनों के बावजूद इसके बारे में देश के बहुत थोड़े लोगों को ही जानकारी है।

भारत में इस प्रकार की भूमि, राष्ट्र की सकल भूमि के 3.4 प्रतिशत भू–भाग पर फैली हुई है। यद्यपि वैश्विक स्तर पर ये नम भूमियाँ पृथ्वी की सतह के 6.4 प्रतिशत हिस्से पर फैली हुई है। भारत में प्राकृतिक नम भूमियाँ हिमालय की ऊचाइयों पर स्थित झीलों, मुख्य नदी तंत्रों के बाढ़ वाले मैदानी क्षेत्रों, शुष्क एवम् अर्द्धशुष्क इलाकों के दलदली क्षेत्रों लैगून तथा पश्च जल (बैकवाटर) तथा नदी मुख पर स्थित सदाबहार दलदली क्षेत्रों, प्रवाल शैलमालाओं और समुद्री नम भूमि के रूप में पाई जाती हैं।

नम भूमि की विशेषताएँ – ये नम भूमियाँ अद्वितीय जैविक संपदाओं से संपन्न होती हैं। इनमें उथले और आम तौर पर गतिशील जल की परिस्थितियों वाले विविध श्रेणी की वनस्पतियों और जीव–जंतुओं की उपस्थिति पाई जाती है। नम भूमियाँ सबसे समृद्ध पारिस्थितिक तंत्र की श्रेणी में गिनी जाती है। पारिभाषिक रूप में भौमिक एवं जलीय प्रणाली के बीच की परिवर्ती भूमि, जिसे मौलिक जलस्तर सतह के करीब पाया जाता है या जहाँ भूमि छिछले पानी से ढकी रहती है, नम भूमि की श्रेणी में आती है।

पारिस्थितिक दृष्टि से नम भूमियों का अपना विशेष महत्व है। पृथ्वी की सतह के मात्र छह प्रतिशत हिस्से पर फैलाव के बावजूद ये नम भूमियाँ सामान्य भूमि से कहीं अधिक उत्पादक होती हैं। इस श्रेणी की भूमि का अपना एक समृद्ध पारिस्थितिकी तंत्र होता है। इसमें अनेकों तरह की उपयोगी वनस्पतियों के साथ ही कई प्रकार के जीव–जंतु भी पाए जाते हैं।

नम भूमि को मच्छरों वाली अनुपयोगी भूमि की सम्यक जानकारी के अभाव मे कूड़े–कचरे की निस्तारण वाले भूखंड के रूप में लिया जाता है। इस अव्यावहारिक सोच के चलते कई नम क्षेत्र खत्म हो गये हैं और कई समाप्त होने की कगार पर हैं। जिससे पक्षियों और वनस्पतियों के ह्रास के कारण ऐसे क्षेत्रों की पर्यावरणीय स्थिति लगातार बिगड़ रही है।

तथापि वैश्विक स्तर पर नम भूमि संबंधी विशेषताओं के चलते बढ़ती चेतना ने हालात में बदलाव की आशा पनपने लगी है।

नम भूमि की पारिस्थितिक विशेषताएं:

नम भू क्षेत्रों में निम्नलिखित कई प्रकार की पारिस्थितिक विशेषताएं पाई जाती हैं–

1. ये सूखे मौसम में जल अवधारण या भू–जल स्तर को बनाये रखने का काम करती हैं।

2. बाढ़ के दौरान ये बाढ़ की हानि को कम कर देती हैं।

3. पोषक तत्वों से युक्त मृदा को संरक्षित करती हैं।

4. ये गंदे जल को साफ करने के साथ ही मत्स्य पालन से ग्रामीण रोजगार उपलब्ध कराती हैं।

5. ये पर्यटन और नौकायन के द्वारा मनोरंजन के साधन उपलब्ध कराती हैं।

6. जल–पक्षियों और जलीय वनस्पतियों के माध्यम से पर्यावरणीय संरक्षण का काम करती हैं।

7. नदियों और इनके आस–पास के पारिस्थितिकी तंत्र को उपयोगी बनाकर उन्हे मनुष्यों के लिए अनुकूल बनाती हैं।

8. पोषक तत्वों का पुनश्चक्रित करती हैं।

दुर्लभ जल–पक्षियों के प्रश्रय क्षेत्र:

नम भूमि क्षेत्रों में जल–पक्षी भोजन, आवास के साथ ही अपने जीवन क्रम की अन्य प्रक्रियाएं भी पूरी करते हैं। इनके प्रजनन, घोसला, निर्मोचन नम क्षेत्रों में ही संपन्न होते हैं। इन पक्षियों की प्राकृतिक बनावट नम और जलीय क्षेत्र में जीवन–यापन के लिए सर्वथा अनुकूल होती है।

इन जल पक्षियों की बनावट ताजे पानी से लेकर समुद्र–तटीय आवासों तक रहने लायक होती है। इनके झिल्लीदार पैर के पंजे, पानी के भीतर से भोजन खोज लेने में सक्षम चोंच और शिकार पकड़ने के लिए पानी में डुबकी लगाने की क्षमता सामान्य विशेषताएं होती हैं। इस प्रकार के पक्षियों में बत्तख, हंस, पनडुब्बी, मुर्गाबी, बलाक (स्टॉक), बक, बगला, आइबिस, स्नूबिल, जलकौवा, पेलिकन, हंसावर (फ्लेमिंगों), सारस, जलकुक्कुट, वणडुब्बी (कूट), जलमुर्गी और किलकिला (किंगफिशर) इत्यादि जलपक्षी शामिल हैं।

हमारे देश में लगभग 310 जाति के नम भूमि क्षेत्र में निवास करने वाले पक्षी पाये जाते हैं इनमें 130 याने लगभग 82 प्रतिशत प्रवासी और 130 याने लगभग 58 प्रतिशत जल–पक्षी अप्रवासी हैं। इन जल पक्षियों मे 173 अप्रवासी जातियाँ हैं। इनमें

से 53 स्थायी प्रवासी हैं। 38 आंशिक अप्रवासी और शीतकालीन जातियाँ हैं।

नम भूमि क्षेत्रों के लिए जलीय पक्षियों का अपना विशेष महत्व है। ये नम भूमि क्षेत्र के पारिस्थितिक तंत्र के महत्वपूर्ण घटक होने के साथ ही इस क्षेत्र के निवासियों के सामाजिक और सांस्कृतिक क्रिया–कलापों को भी प्रभावित करते हैं। ये जलपक्षी अपनी बनावट और झुंडों में मनमोहक दृश्य उपस्थित करते हैं। वास्तव में नम भूमि क्षेत्र में पाए जाने वाले ये जलपक्षी प्रकृति की अनुपम कलाकृति होते हैं।

इतनी विशेषताओं के बावजूद इन जलपक्षियों के प्रति मानव दृष्टिकोण अच्छा नहीं रहा है, जो आज भी वैसी ही है। मानव के हस्तक्षेप के कारण कई जलपक्षियों का अस्तित्व आज खतरे मे है। संकट में पड़े इन जलपक्षियों के संबंध में अध्ययन से पता चलता है कि 242 जातियों में से कुल 82 जातियाँ एशिया में पाई जाती हैं, जिनमें से 39 भारत मे हैं। इनमें प्रमुख हैं पेंटेड स्टॉर्क (*माइक्टेरिया ल्यूकोसेफाला*), डार्टर (*एनहिंगा मेलानोगास्टर*) स्पॉट बिल्ड पेलिकन (*पेलिकेनस फिलिपेनिसिस*), लेसर एडजुटेंट (*लेप्टोटिलोस जावानिकस*) तथा भारतीय स्किमर से पहले दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशिया के नम भूक्षेत्रों में बड़ी संख्या में पाये जाते थे, लेकिन आज इनकी संख्या बहुत तेजी से घट रही है।

नम भूमियों पर वर्तमान संकटः

वर्तमान में नम भूमियाँ दुनिया की सबसे अधिक संकट वाली भूमियों में से है। इस स्थिति का प्रभाव भारतीय नम भूमियों पर भी पड़ा है। तेजी से बढ़ती मानव आबादी इसका बड़ा कारण है। विकास की अनियोजित दशा और दिशा तथा जलग्रहण क्षेत्रों के अनुचित उपयोग के चलते नम भूमि का क्षेत्रफल लगातार घटता जा रहा है। घटती नम भूमियों में उद्योग, कृषि एवं शहरी विकास की भूमिका बहुत अधिक है।

नम भूमि में कमी के प्रमुख कारण प्राथमिक प्रदूषक, तलछट, उर्वरक, मानव–मल, जंतु अवशिष्ट, कीटनाशी और भारी धातुएँ अदि हैं।

○○○

4

ग्रामीण क्षेत्रों में जल-प्रदूषण

डॉ० जितेंद्र कुमार सिंह

भूमिका

जल, जीवन के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और इसके बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती है पृथ्वी पर जल की जितनी भी मात्रा उपलब्ध है उसका बहुत कम अंश ही मानव उपभोग हेतु लाभदायक है। दुर्भाग्य से लाभदायक और उपयोगी जल की यह मात्रा भी आज लगातार प्रदूषित होती जा रही है। जिस कारण हमारे लिए स्वच्छ पेयजल की निरंतर कमी होती जा रही है। जल प्रदूषण का दुष्प्रभाव, मनुष्यों के साथ–साथ जीव–जंतुओं और वनस्पतियों पर भी समान रूप से पड़ता है। इसलिए जल संरक्षण आज बहुत ही आवश्यक और महत्वपूर्ण हो गया है। प्रस्तुत आलेख में ग्रामीण इलाकों में जल–प्रदूषण के कारण उसका जन–जीवन पर प्रभाव तथा उससे बचाव के उपायों पर प्रकाश डाला गया है।

कुछ समय पहले तक माना जाता था कि प्रदूषण शहरी चीज है जो शहरों में पैदा होते हैं। और जिसका दुष्प्रभाव शहरी लोगों तक ही सीमित रहता है। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। ग्रामिण क्षेत्रों में भी कई ऐसी गतिविधयाँ होती हैं। जिनके कारण विभिन्न प्रकार के प्रदुषण पैदा होते हैं। साथ ही यह भी सत्य है कि शहरी स्रोत वाले प्रदूषकों का प्रभाव ग्रामीण पड़ने वाला जनजीवन को भी भुगतना पड़ रहा है।

पर्यावरण संतुलन आज समूचे विश्व की ज्वलंत समस्याओं में से एक है। अपनी सुख–सुविधाओं में लगातार वृद्धि करने के लिए मनुष्य ने प्रकृति का दोहन तथा उसके प्रति अमानवीय व्यवहार किया है, उसके दुष्परिणाम अत्यंत भयावह रूप में हमारे सामने आ रहे हैं। वस्तुतः करोड़ों वर्ष पूर्व पृथ्वी पर पैदा हुआ जीवन आज पर्यावरण असंतुलन तथा प्रदूषण से ग्रस्त है। मनुष्य की लोलुपता के कारण आज हम पर्यावरण संकट के बुरे फंदे में फसँ चुके हैं।

औद्योगिकरण और शहरीकरण के कारण आज न केवल शहरी क्षेत्रों में साँस लेने के लिए शुद्ध हवा की कमी है अपितु इनके दुष्परिणाम से हमारे

गाँव भी सुरक्षित नहीं हैं। नदी की धाराओं के साथ–साथ गाँवों के आसपास के तालाब, पोखर एवं अन्य जलस्रोत भी आज प्रदूषित हो चुके हैं। जो नदियाँ और जलाशय कभी मानव सभ्यता के लिए आदर और श्रद्धा के प्रतीक थे, आज उनका जल पीने तो क्या स्नान योग्य भी नहीं है। जीवनदायिनी नदियाँ आज जहर उगल रही हैं। घरों के कूडे–कचरे और कारखानों के अपशिष्ट ने उपजाऊ मिट्टी की परतों और भूमिगत जल तक को संक्रमित कर दिया है। यद्यपि नगरीय क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में वायु एवं शोर प्रदूषण की समस्या अभी उतनी विकराल नहीं है लेकिन खेतों में पैदावार बढ़ाने के लिए, रासायनिक उर्वरकों, खरपतवारनाशियो तथा कीटनाशियो के बेतहाशा इस्तेमाल से प्रदूषण की समस्या गंभीर रूप धारण करती जा रही है।

ग्रामीण जल प्रदूषण

शहरी कूडे–कचरे, मल–मूत्र, प्लास्टिक, पॉलिथीन और अन्य कचरा तथा विभिन्न उद्योगों के बहिः स्राव नदियों तथा अन्य प्राकृतिक जलस्रोतों में बहा देने से भारी मात्रा में जल प्रदूषण उत्पन्न हो रहा है इसके अलावा दिनोंदिन द्रुतगति से बढ़ती आबादी का पेट भरने के लिए हमारी कृषि भूमि पर दबाव बढ़ता जा रहा है जिसके कारण अधिकाधिक उपज लेने के चक्कर में रासायनिक उर्वरकों, खरपतवारनाशियों तथा कीटनाशियों आदि का उपयोग भी तेजी से बढ़ गया है, जो ग्रामीण क्षेत्रों में खतरनाक जल प्रदूषण को जन्म देता है। जल प्रदूषण का दुष्प्रभाव न केवल उन जीवों पर पड़ता है जो जल के भीतर जीवनयापन करते हैं, अपितु इसका कुप्रभाव ग्रामीण जनस्वास्थ्य पर भी पड़ता है।

जल प्रदूषण के मुख्य कारक

जब कोई बाहरी वस्तु या पदार्थ के किसी पर्यावरणीय घटक में मिल जाने के कारण उसके प्राकृतिक गुण नष्ट हो जाते है तो वह घटक (जल, वायु, मृदा आदि) प्रदूषित हो जाता है। जिस वस्तु या पदार्थ के कारण पर्यावरणीय घटक प्रदूषित होता है। उसे 'प्रदूषक' कहते हैं, अर्थात् प्रदूषण के लिए जिम्मेदार पदार्थ ही प्रदूषक कहलाता है। जल प्रदूषक कृषि, उद्योग तथा अन्य मानवीय क्रिया–कलापों के द्वारा उत्पन्न होते हैं। जल सबसे अधिक औद्योगिक अपशिष्ट के कारण प्रदूषित होता है। चीनी, एल्कोहॉल, उर्वरक, तेलशोधक, कपडा, कागज और लुगदी, कीटनाशक, औषधि, दुग्ध उत्पाद, ताप विद्युत गृह, चर्म, कार्बनिक तथा अकार्बनिक रसायन, सीमेंट, रबर तथा प्लास्टिक, खाद्य–प्रसंस्करण आदि उद्योग जल, प्रदूषण के मुख्य कारक हैं।

इसके अलावा मलमूत्र प्लास्टिक तथा पॉलिथीन कचरा, भारी धातुएँ आदि भी प्रमुख जल प्रदूषक हैं। मानव अपने उपभोग तथा कृषि कार्यो हेतु जल का दोहन भूमिगत स्रोतों से करता है। अभी तक भूमिगत जल स्रोतों को शुद्ध माना जाता था लेकिन हाल के वर्षों में भूमिगत जल में कार्बनिक रसायनों, भारी धातुओं तथा अन्य प्रदूषकों की उपस्थिति का पता चला है जिससे स्पष्ट है कि प्रदूषण ने वहाँ भी अपना असर दिखाना शुरू कर दिया है। शहरों में सीवर लाइनों का जाल बिछा होता है जिनकी

सहायता से मलमूत्र को नदियों आदि में छोड़ा जाता है। कई बार इन सीवरों में रिसाव होता रहता है जिस कारण मलमूत्र रिस–रिसकर भूमिगत जलस्रोतों तक पहुँचता रहता है। इस प्रकार औद्योगिक अपशिष्ट आदि भी भूमिगत जलस्रोतों तक पहुँचता तक रहता है।

पेयजल मुख्यतः भूमिगत जलस्रोतों से ही प्राप्त किया जाता है। नगरों तथा कस्बों में तो इस भूमिगत जल को साफ, उपचारित और क्लोरीनीकृत करके इसका उपयोग किया जाता है लेकिन गाँवों में इसका प्रभाव ग्रामीणों के स्वास्थ्य पर ही पड़ता है। गाँवों में पेयजल प्राप्त करने के मुख्य साधन हैंडपंप या कुएँ होते हैं जो प्रदूषित भूमिगत जल को ही हमारे रसोईघर में पहुँचा देते हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात ही है कि गाँवों में पेयजल को साफ करके ही प्रयोग में लाया जाए। भूमिगत जल प्रदूषण का सबसे बड़ा खतरा यह है कि स्थलीय जल की भाँति इसमें स्वतः शुद्धि की क्षमता नहीं होती है। यदि एक बार भूमिगत जल प्रदूषित हो जाए तो उसे प्रदूषण रहित बनाना लगभग असंभव है। इसलिए एक ओर तो हमें कोशिश करनी चाहिए कि भूमिगत जल का प्रयोग पेयजल के रूप में करने से पूर्व उसे स्वच्छ और शुद्ध बना लेना चाहिए।

पेयजल में नाइट्रेट और फ्लुओराइड की अशुद्धियाँ

'फ्लुओराइड' और 'नाइट्रेट' ऐसे रासायनिक पदार्थ हैं जिनकी हमारे शरीर को बेहद अल्प मात्रा में आवश्यकता होती है लेकिन यदि इसकी मात्रा थोड़ी सी भी अधिक हो जाए तो यह स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा बन सकता है। प्रकृति में फ्लुओराइड, वायु, जल, मृदा, सब्जी, समुद्री जल तथा पशुओं और मनुष्यों की मांस पेशियों में पाया जाता हैं। प्रदूषित भूमिगत जल में इसकी मात्रा काफी अधिक होती है। मानव शरीर में फ्लुओराइड मुख्यतः भूमिगत जल, सब्जियों और मांस के द्वारा पहुँचता है। यदि शरीर में इसकी मात्रा अनुपात से अधिक हो जाती है तो फ्लुओराइड आविषता जैसे खतरनाक रोग हो सकते है। दांतों के इनेमेल (ऊपरी परत) के निर्माण के लिए फ्लुओराइड आवश्यक है लेकिन शरीर में इसकी मात्रा यदि 1 पीपीएम से अधिक हो जाए तो यह इनेमेल के लिए भी खतरा बन जाता है। फ्लुओरोसिस नामक फ्लुओराइडजनित रोग के लक्षण सर्वप्रथम 1933 में मद्रास राज्य में कुछ लोगों में पाए गए थे। फिर इससे मिलते–जुलते लक्षण हैदराबाद राज्य के पशुओं में भी पाए गए। आज दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु जैसे 13 राज्यों के लगभग तीन करोड़ लोग फ्लोओरोसिस से पीड़ित हैं। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार अकेले राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में ही 35 लाख से भी अधिक व्यक्ति फ्लुओराइड की अधिक़ता के कारण विकलांग हो गए हैं।

'नाइट्रेट' भी मुख्यतः भूमिगत जल के माध्यम से ही मानव–शरीर में पहुँचकर उसे नुकसान पहुँचाता

है। नाइट्रेट, नाइट्रोजन का यौगिक है और नाइट्रोजन भूमि में कई स्रोतों से पहुँचता है। वास्तव में नाइट्रेट एक प्रबल ऑक्सीकारक होता है जो रक्त के हीमोग्लोबिन में उपस्थित फेरस को फेरिक ऑक्साइड में बदल देता है जिससे हीमोग्लोबिन की ऑक्सीजन को ग्रहण करने की क्षमता समाप्त हो जाती है। फलस्वरूप शरीर के विभिन्न अंगों, ऊतकों और कोशिकाओं को ऑक्सीजन की आपूर्ति नहीं हो पाती। उपर्युक्त व्याधियों से बचने का एकमात्र तरीका यही है कि नाइट्रेटमुक्त, प्रदूषणरहित जल का ही सेवन किया जाए। यहाँ उल्लेखनीय है कि जल से नाइट्रेट की मात्रा उसे उबालकर दूर नहीं की जा सकती। इस अशुद्धि को दूर करने के लिए अर्थात विलवणन (डिसेलीनेशन) लवण रहित करना अथवा आसवन करना आवश्यक है।

कीटनाश्यिो, उर्वरकों आदि से जल प्रदूषण

अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि के कारण सबको भोजन उपलब्ध कराना भी एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। भारत सहित समूचे विश्व में कुल कृषि उत्पादन का बहुत बड़ा हिस्सा कीट–पतंगों, फफूंदी, कवक, चूहों आदि द्वारा नष्ट कर दिया जाता है। भारत में यह समस्या काफी अधिक है जिस कारण हमारे किसानों को काफी नुकसान उठाना पड़ता है। इन हानिकारक सूक्ष्म जीवों से बचने के लिए विभिन्न प्रकार के रसायनों का प्रयोग किया जाता है। इन कीटनाशियों के उपयोग से हमारी कृषि उपज तो बढ़ी है लेकिन ये वर्षाजल से घुलकर हमारे प्राकृतिक और भूमिगत जलस्रोतों को बुरी तरह प्रदूषित कर देते हैं। कृषि कार्यों मे प्रयुक्त किए जा रहे कीटनाशियों को चार समूहों में विभाजित किया जाता है– आर्गेक्लोरीन, आर्गेफॉस्फेट, कार्बामेट तथा पॉलीक्लोरीनीकृत बाईफेनिल।

इन जीवनाशी रसायनों से पर्यावरण तो प्रदूषित होता ही है साथ ही इनका दुष्प्रभाव जीव–जंतुओं और वनस्पतियों पर भी पड़ता है। इनमें से कुछ रसायन तो इतने विषैले होते हैं कि उनसे मछलियाँ, साँप, कछुए तक मर जाते हैं। मिट्टी में डाली गई डीडीटी, गैमेक्सीन, एल्ड्रिन तथा क्लोरोडेन आदि कीटनाशियों का अवशोषी प्रभाव आगामी 12 वर्षों तक देखा गया है। मिट्टी से वर्षाजल के साथ बहकर या रिसकर ये रसायन तालाबों, झीलों, नदियों, कुओं तक पहुँच जाते हैं। और वहाँ के जीवन (जीव–जंतु और वनस्पति) को प्रभावित करते हैं। इन स्रोतों का जल पीने वाले व्यक्ति भी कई प्रकार की बीमारियों का शिकार हो जाते हैं। ठीक इसी प्रकार के दुष्प्रभाव, रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग के भी पड़ते हैं। खेतों में डाला गया रासायनिक उर्वरक, वर्षाजल में घुलकर और प्राकृतिक जलस्रोतों तक पहुँचकर उन्हें प्रदूषित कर देता है और वह जल पीने योग्य नहीं रह जाता है।

ग्रामीण जनस्वास्थ्य और जल प्रदूषण

जीवन के लिए जल अत्यधिक आवश्यक है। चूंकि 'जल ही जीवन है' अतः यदि जल ही प्रदूषित हो जाए तो यह जानलेवा भी बन जाता है। प्रदूषित जल के सेवन से विभिन्न प्रकार के जलवाहित रोग हो जाते हैं, जैसे कि टायफाइड, शिशु–प्रवाहिका,

पेचिश, यकृतशोथ, पोलियो, अमीबी पेचिस, पीलिया, ऐस्केरिएसिस, फीताकृमि रोग, आदि। सामान्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में तालाब, झील, नदी तथा भूमिगत स्रोतों का प्रदूषित जल लगातार पीते रहने से ग्रामीण रीरू, निस्टोसोसिस और लेप्टोस्पाइरोसिस आदि रोगों से ग्रसित हो जाते हैं। भूमिगत जल में फ्लुओराइड की अधिकता से जहाँ दंतक्षय और दंत विकृति के रोग हो जाते हैं वहीं इसमें फेरस बाइकार्बोनेट की अशुद्धि के कारण अपच और कोष्ठबद्धता जैसी व्याधियाँ हो जाती हैं।

कीटनाशियों ने भी ग्रामीण जन–स्वास्थ्य को गंभीर खतरा पहुँचाया है। डाई ब्रोमोक्लोरो प्रोपेन (डीबीसीपी) कीटनाशी से कैंसर तथा नपुंसकता जैसे रोग हो जाते हैं तो नाइट्रोजनी उर्वरकों के कारण रक्तविषाक्त हो जाता है जिससे बच्चों की तो मृत्यु तक हो जाती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक प्रदूषित जल के कारण विश्व में प्रतिवर्ष पाँच लाख बच्चों सहित डेढ़ करोड़ लोगों की मृत्यु हो जाती है।

ग्रामीण क्षेत्रों के जल प्रदूषण से बचाव उपाय

यद्यपि जल प्रदूषण की समस्या शहरों में ही अधिक होती है लेकिन हमारे गाँव भी अब इससे सुरक्षित नहीं हैं। यदि समय रहते ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ सावधानियाँ बरती जाएँ तो निश्चित रूप से ग्रामीण जनजीवन को प्रदूषण के खतरे से बचाया जा सकता है। कुछ सावधनियाँ इस प्रकार हैं–

1. प्लास्टिक तथा पॉलिथील का कचरा मिट्टी को प्रदूषित करता है इसलिए इनका उपयोग कम से कम करना चाहिए।

2. प्राकृतिक जलस्रोतों को दूषित होने से बचाना चाहिए। गाँव के आसपास की नदियों मे न तो अधजले शव बहाने चाहिए और न ही इनमें पशुओं को नहलाना चाहिए।

3. गाँव से निकले घरेलू कचरे, मल–मूत्र आदि को सीधे नदी, तालाब आदि में नहीं डालना चाहिए।

4. कुओं में भी कूडा–करकट नहीं डालना चाहिए। यथासंभव कुओं को ढ़ककर रखना चाहिए और महीने में कम एक बार कुओं में पोटैशियम परमैंगनेट या ब्लीचिंग पाउडर डालें।

5. गाँव के बाहर खुले में शौच नहीं करना चाहिए वरन् शौचालयों का प्रयोग करना चाहिए। शौचालयों के निर्माण के लिए आजकल सरकार द्वारा अनुदान भी दिया जाता है। अधिक जानकारी के लिए ग्राम विकास अधिकारी या ग्राम पंचायत अधिकारी से संपर्क किया जा सकता है।

6. कीटनाशियों खरपतवारनाशियों और रासायनिक उर्वरकों का संतुलित उपयोग किया जाना चाहिए। इनके स्थान पर कुछ अन्य वैकल्पिक साधनों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

7. हमेशा शुद्ध, स्वच्छ व प्रदूषण रहित पेयजल का ही प्रयोग करना चाहिए। निस्तारण, छनन आदि विधियों से भी पेयजल की कुछ अशुद्धियाँ दूर की जा सकती हैं।

उपसंहार

अंत में यह कहा जा सकता है कि अगर कुछ सावधानियाँ बरती जाएँ तो जल प्रदूषण की समस्या से निजात मिल सकती है। पर्यावरण को विशुद्ध एवं लाभकारी बनाया जा सकता है। साथ ही ग्रामीण जन–स्वास्थ्य की रक्षा भी की जा सकती है। यह कार्य ग्रामीणों को शिक्षित कर आसानी से किया जा सकता है इसके लिए जनजागरण, जनचेतना, जनसहयोग और जन सहभागिता की सोच विकसित करना आज के समय की जरूरत और मांग है।

○○○

5

गुणकारी काली मिर्च

डॉ० दीपक कोहली

काली मिर्च दुनिया में संभवतः सर्वाधिक उपयोग में लाए जाने वाला मसाला है। विभिन्न देशों मी खान–पान की आदतों में इतना अंतर होने पर भी इसे सभी समान रूप से पसंद करते हैं। ये गोल दाने और कुछ नहीं, *पाइपर नाइग्रम* नामक बेलदार पौधे के सुखाए हुए कच्चे फल हैं। पकने पर इसके फल के छिलके सरलता से उतर जाते हैं और ये सफेद मिर्च के रूप में उपयोग में लाए जाते हैं इसका पादप "पाइपरेसी" कुल का सदस्य है।

काली मिर्च आज भले ही एक साधारण वस्तु हो, परंतु पांच–छह सौ वर्ष पूर्व तक इसे बहुत मूल्यवान समझा जाता था। सम्राट "ऐलेरिक" के जमाने में यह केवल राजा–महराजाओं के ही इस्तेमाल की वस्तु थी। पांचवी शताब्दी के आरंभ में गोथ्स के सम्राट "ऐलेरिक" ने रोम पर हमला किया। ऐलेरिक की सेना बहुत बहदुर थी। जल्दी ही उसने रोम पर अधिकार कर लिया। रोमवासी गुलाम बनकार रहने को तैयार नहीं थे। स्रमाट ऐलेरिक के पास मुक्ति का संदेश भिजवाया। ऐलेरिक ने कहा कि मुक्त तो कर दूँगा, मगर उसके बदले में आपको मुझे एक चीज देनी होगी। जानते हैं वह चीज क्या थी न चाँदी थी, न सोना, न ही हीरे–जवाहरत। तो फिर क्या थी वह चीज थी काली मिर्च– जी हाँ रोम की मुक्ति की कीमत ऐलेरिक ने लगाई थी लगभग चौदह सौ किलाग्राम काली मिर्च । है न रोचक बात कि एक राजा ने शहर की कीमत को काली मिर्च में तोला।

काली मिर्च व अन्य मसालों की चाहत ने कोलंबस, मार्कोपोलो और वास्कोडीगामा जैसे विश्वविख्यात खोजी नाविकों को लंबी–लंबी यात्राएं करने के लिए प्रेरित किया। मसालों की खोज में की गई इन यात्राओं के दौरान नए नए समुद्री मार्गों की खोज हुई और सुदूर बसे कई देश परस्पर व्यापार और मित्रता के सूत्र में बंधे। सत्रह वर्ष की आयु में मार्कोपोलो अपने पिता और चाचा के साथ अपनी पहली समुद्री यात्रा पर निकला। इस यात्रा के दौरान पोलो परिवार की जिन चीजों पर नजर थी, वे थीं मसालें तथा व्यापरिक महत्व की अन्य

उपभोक्ता वस्तुएं। उन दिनों भी सभी व्यापारिक–केंद्रों पर भारतीय मसालों की धूम थी। बाद में मार्कोपोलो ने अकेले भी अनेक यात्राएं की। उसके यात्रा वृत्तांतों में काली मिर्च के उपयोग का काफी उल्लेख मिलता है। भारत के मलाबार तट पर काली मिर्च के मिलने की बात उसने कही थी।

वास्कोडिगामा तथा उसके साथियों ने भारत तक के समुद्री मार्ग की तो खोज कर ही दी, साथ ही इस यात्रा के फलस्वरूप उन्हें यह भी पता चल गया कि कालीकट कालीमिर्च का केंद्र है।

काली मिर्च भारतीय पौधा है। इसकी उत्पत्ति भारत के पश्चिमी घाट के क्षेत्रों में हुई बताई जाती है। भारत के अलावा इंडोनेशिया एवं मलेशिया भी काली मिर्च के प्रमुख उत्पादक देश है। काली मिर्च के विश्व व्यापार में भारत एवं इंडोनेशिया का 65 प्रतिशत योगदान है। श्रीलंका, कम्बोडिया, थाईलैंड, मैलागासी रिपब्लिक, आइवरी कोस्ट, जमाइका, ब्राजील एवं हैती आदि देशों में भी काली मिर्च का उत्पादन होता है।

भारत 1,20,000 (एक लाख बीस हजार) हेक्टेयर क्षेत्र में प्रतिवर्ष लगभग 30,000 (तीस हजार) टन काली मिर्च का उत्पादन करता है। संपूर्ण भारत के काली मिर्च का 97 प्रतिशत उत्पादन केरल राज्य करता है। केरल के अतिरिक्त कर्नाटक, तमिलनाडु तथा आंध्र प्रदेश में भी इसकी खेती बड़े पैमाने पर होती है।

काली मिर्च के पौधे बेलनुमा तथा आरोही होते हैं, जिसकी औसत लंबाई (ऊंचाई) लगभग 4 से 9 मीटर होती है। यह एक बहुवर्षी पौधा हैं। इसकी बेल या लताओं को वृक्षों पर चढ़ा दिया जाता है। इसके पत्ते एकांतर क्रम में लगे होते हैं। पत्तों का आकार अंडाकार होता है एवं इनके सिरे नुकीले होते हैं। षत्तियों की लंबाई लगभग 11 सेन्टीमीटर होती हैं। पुष्पक्रम जो बाद में मिर्चों का गुच्छा बन जाता है, विभिन्न लंबाई वाला, शहतूत के आकार का लटकने वाला शूल (स्पाइक) होता है। पौधें पुंकेसरी, स्त्रीकेसरी या आमतौर पर द्विलिंगी होते हैं। काली मिर्च का फल एकबीजी होता है तथा प्रत्येक (स्पाइक) पर 20 से 28 तक फल लगे रहते हैं। फल के पकते समय उसका रंग गहरे से लाल हो जाता है। फल का स्वरूप "बेरी" जैसा होता हैं केरल में काली मिर्च की कई किस्में मिलती हैं, जिनमें से प्रमुख हैं, "नाराया", "करिमुन्ता," "चोल", "कुंभचोल" तथा "पेरूमकोडी" आदि।

काली मिर्च की खेती के लिए आर्द्र, उष्ण जलवायु एवं प्रतिवर्ष लगभग 250 सेंटीमीटर वर्षा आवश्यक है। इसका पादप समुद्री किनारों तथा समुद्र तल से 1200 मीटर की ऊंचाई तक बखूबी उग सकता है। कलम रोपने से फूल आने तक लगभग तीन से सात वर्ष का समय लगता है। फूल आने के पांच से छह माह पश्चात् फल लगने आरंभ हो जाते हैं। फिर फलों के गुच्छे हाथों से चुन लिए जाते हैं। गुच्छों की कटाई होती है ताकि फल डंठलों से अलग हो जाऐ। फलों को तब 5–6 दिनों के लिए धूप में सुखाया जाता है जिससे उनका रंग काला पड़ जाता है यही काले गोल फल "काली मिर्च है। इस प्रकार, वास्तव में काली मिर्च सुखाया हुआ कच्चा फल है। काली मिर्च जब पूर्णतः पक जाती है तब उसके छिलके सरलता से दूर हो जाते हैं और वह सफेद हो जाती है जिसे "सफेद मिर्च" कहते हैं।

काली मिर्च की विशेष सुगंध व तीखेपन का क्या राज है? काली मिर्च की विशिष्ट सुगंध इसमें उपस्थित वाष्पशील तेल के कारण होती है तथा ऑलियोरेसिन एवं एल्केलॉयड इसके स्वाद को तीखा करते हैं।

"पाइपरीन" काली मिर्च का मुख्य एल्केलॉयड है एवं जिसका प्रतिशत 4.5 से 8.0 तक होता है पिपरीन के अतिरिक्त इसमें चैविसीन व पाइपरीन एल्केलायॅड भी उपस्थित होते है, लेकिन इनका प्रतिशत पिपेरीन की तुलना में बहुत कम होता है।

काली मिर्च का ढंग से उपयोग किया जाए तो वह गुणकारी रसायन है। यह लार तथा जठर रसों के बहाव को उद्दीपित करता है, जिसके परिणामस्वरूप इसके उपयोग के उपरांत कुछ ठंडा सा अनुभव होने लगता है। काली मिर्च का इस्तेमाल गरम मसाले, सूप, सॉस, अचार आदि को बनाने में किया जाता है। इसके शीतलन–गुण के कारण इसका उपयोग ताजगी प्रदान करने वाले पेय–पदार्थों में भी किया जाता है। काली मिर्च में जीवाणुरोधीं एवं कवकरोधी गुण भी पाए जाते हैं, जिस कारण यह अनेक आयुर्वेदिक दवाओं में भी इस्तेमाल होती है। भाप–आसवन द्वारा काली मिर्च से तेल भी निकाला जाता है, जिसका उपयोग विभिन्न पकवानों को सुंगधित तथा स्वादिष्ट बनाने में किया जाता है।

जुकाम और खासीं के लिए काली मिर्च का सेवन उत्तम है। काली मिर्च का चूर्ण डालकर उबाला हुआ दूध पीने से जुकाम व खासीं मिटती है। काली मिर्च पीसकर रोज शहद के साथ चाटने से दुर्बलता दूर होती है तथा शरीर पुष्ट होता है। पेट के वायुरोग तथा अपच में भी काली मिर्च लाभकारी है। उचित मात्रा में काली मिर्च का नित्य सेवन करने वालों को वायु की पीड़ा कभी नहीं होती तथा पाचन शक्ति तेज होती है। इसके अलावा, काली मिर्च का चूर्ण तुलसी के रस और शहद में मिलाकर पीने से हर प्रकार का बुखार उतर जाता है। काली मिर्च और नमक के मिश्रण को फाकने से उल्टी में फायदा होता है। इसके सेवन से आखों की ज्योति भी बढ़ती है। काली मिर्च को मिश्री के साथ खिलाने पर हकलाहट कम होती है। यही नहीं, काली मिर्च के सेवन के कृमिरोग तथा हैजा भी ठीक होता है।

जहाँ एक ओर काली मिर्च के अनेक लाभ हैं वहीं दूसरी ओर अधिक मात्रा में इसके असंतुलित सेवन से आँतों में जलन, पेट में दर्द एवं मूत्राश्य में असह्य पीड़ा हो सकती है। अतः, काली मिर्च को संतुलित एवं अल्प मात्रा में ही अपने आहार में लेना चाहिए।

ooo

6

प्राचीन भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

प्रो. राजन कुमार तिवारी

प्राचीन काल से ही भारत में विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी की सुदृढ़ परंपरा रही है। जो कि इस धारणा के बिल्कुल विपरीत है कि भारतीय रूढ़िवादी रहे हैं। भारतवर्ष में पुरापाषाण काल से ही प्रौद्योगिकी का विकास होता रहा है। आद्य ऐतिहासिक काल हो या ऐतिहासिक काल का कोई भी खंड, भारतीयों ने विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को पर्याप्त ध्यान दिया है और अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ भी हासिल की हैं।

3000 ई. पू. से लेकर 320 ई. पू. तक के काल को भारतीय इतिहास का आद्य ऐतिहासिक काल कहा जाता है। क्योंकि इसके पूर्व या तो पुरातात्विक स्रोत ही उपलब्ध हैं अथवा लिखित। सिंधुघाटी सभ्यता की लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है और ऋग्वैदिक काल का पुरातात्विक स्रोत नहीं मिल पाया है। 300 ई. पू. (सिंधु घाटी सभ्यता से पूर्व) अमरी, कोटदीजी आदि में जिस स्तर तक सभ्यता विकसित थी, उसका निर्माण क्या वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान के बिना संभव हो सका होगा?

सिंधु घाटी सभ्यता का काल 2500 ई. पू. से 1750 ई. पू. माना जाता है, हालांकि अब यह कहा जा रहा है कि सिंधु घाटी की सभ्यता का पतन नहीं हुआ था और इसका विस्तार अन्य क्षेत्रों में होता गया था। यह सभ्यता अत्यंत उन्नत थी और इस सभ्यता काल में मनुष्यों को लगभग हर प्रकार की भौतिक सुख–सुविधा उपलब्ध थी। सिंधु घाटी के निवासी पहिया, हल, विभिन्न प्रकार के धातु आदि के प्रयोग से पूर्णरूपेण परिचित थे। अग्नि–प्रकोप एवं बाढ़ प्रकोप के साथ–साथ सूखा का प्रकोप जैसी प्राकृतिक अपादाओं से भी सुरक्षा की तकनीक उन्होनें विकसित कर रखी थी। अन्न–भंडार एवं चहारदीवारी का निर्माण उनकी सुरक्षात्मक नीति का द्योतक हैं। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास के कारण ही सिंधु घाटी सभ्यता अपनी समकालीन सभ्यताओं से पृथक् पहचान भी रखती है। इस सभ्यता की नगर–निर्माण योजना एवं सफाई तथा स्वास्थ्य की योजना आज भी एक उन्नत नगर के लिए आदर्श है। नगर का निर्माण आयताकार परिपथ में किया गया था, नगर में पक्की ईटों का उपयोग प्रचुरता से किया गया था, घरों में शौचलयों एवं नालियों की व्यवस्था की गई थी उन्हें घर से बाहर निकालकर नहरों तक ले जाने की भी व्यवस्था की गई थी। यातायात की भी उन्नत व्यवस्था थी इस सभ्यता में सड़कों का निर्माण इस प्रकार किया गया था कि वे एक दूसरे को परस्पर समकोण पर काटती थीं। नदियों एवं समुद्रों के किनारे गोदियों का निर्माण किया गया था। शिल्पकारी भी उन्नत किस्म की थी। इस सभ्यता में जहाज–निर्माण का प्रमाण मिला है, मूर्तियों का खाँचा मिला है। यद्यपि इस सभ्यता में छोटी–बड़ी अनेक मूर्तियाँ मिली हैं, तथापि कांस्य की नर्तकी की मूर्ति उच्च तकनीक को प्रदर्शित करती है। किसी भी सभ्यता की अधिकाधिक जानकारी लिखित स्रोत से ही मिलती है, किंतु दुर्भाग्यवश सिंधुवासियों की लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है।

वैदिक सभ्यता का काल 1500 ई.पू. से 600 ई. पू. तक माना जाता है। प्राचीन भारतीय इतिहास के इस काल की जानकारी तो मिलती है, किंतु स्पष्ट पुरातत्वीय स्रोत नहीं उपलब्ध होने से वैदिक काल से भारत में विज्ञान के पहलुओं की जानकारी एवं उनके प्रयोग के नए युग की शुरूआत होती है। इस काल में धर्म ने वैज्ञानिक अनुसंधानों एवं उपलब्धियों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस काल में अनेक ऐसे ग्रंथों की रचना हुई, जो धार्मिक दृष्टि से भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। ऐसे ही ग्रंथों में से एक है 'शुल्वसूत्र'। इसकी रचना यज्ञशालाओं एवं यज्ञकुंडों के लिए की गई थी और इसमें ज्यामितीय प्रयोगों के उल्लेखनीय संदर्भ हैं। गणित प्राचीन भारत में विज्ञान के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता था और इसलिए गणित के क्षेत्र में प्राचीन काल के भारतीयों की उपलब्धियाँ किसी भी दूसरी सभ्यता के निवासियो की तुलना में बहुत अधिक थीं।

वैदिक युग में भारत न केवल ज्यामिति के क्षेत्र में, अपितु अंकगणित के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इतिहासकारों का यह मानना है कि शून्य (0) का आविष्कार ईसा से शताब्दियों पूर्व किसी भारतीय ने ही किया था। वर्तमान विश्व में प्रचलित अंतरराष्ट्रीय मानक अंक 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 भारतीयों अंको मे ही विकसित हैं, प्रथमतः अरबों ने भारतीयों से 'हिन्दस' अंक रूप के रूप सीखा और इसके बाद पाश्चात्य देशों को सिखाया।

भारत में आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर भाष्कराचार्य, महावीर, आर्यभट्ट और श्रीहरि सदृश गणितज्ञ हुए हैं। इन गणितज्ञों ने जिन सिद्धांतों एवं सूत्रों की स्थापना की थी, वे आज के कंप्यूटर युग में भी आश्चर्यजनक प्रतीत होते हैं। इस संदर्भ में ध्यातव्य है कि महान् गणितज्ञ आर्यभट्ट ने पाँचवी सदी में ही π का मान 3.1416 निर्धरित कर दिया था और यह वर्तमान में भी मान्य है। भास्कर द्वितीय ने अपने बीजगणित सिद्धांतो एवं 'सिद्धांत शिरोमणि' नामक ग्रंथों की सर्जना कर ख्याति अर्जित की। ज्यामिति, त्रिकोणमिति, अंकगणित, बीजगणित आदि गणित के विभिन्न क्षेत्रों में भारत ने युगों तक संपूर्ण विश्व का मार्ग दर्शन किया है।

गणित के क्षेत्र में तो भारत ने विश्व का मार्गदर्शन किया ही है, खगोलिकी एवं ज्योतिष विद्या के क्षेत्र में भी भारत की सुदृढ़ परंपरा रही है। धर्मिक कर्मकांडों से इन विधाओं का सृजन हुआ और कालांतर में इसका उपयोग कृषि–कार्य के लिए भी होने लगा। वर्तमान में ग्रहों की दशा को लेकर जो मान्यता प्रचलित है कि 'सूर्य सौरमंडल' के केंद्र में है, इस का सूत्रपात आर्यभट्ट ने ही किया था। विश्व में पहली बार उन्होने ही यह सिद्धांत प्रतिपादित किया था कि पृथ्वी ही सूर्य की परिक्रमा करती है और पृथ्वी अपने अक्ष पर भी घूमती है। उन्होने पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा में लगने वाले समय की गणना भी तथ्यों के साथ की थी। उनकी गणना पूर्णतया प्रामाणिक है। प्राचीन भारत के वैज्ञानिकों ने ही पृथ्वी की परिधि की सटीक गणना कर ली थी। 'पंचसिद्धांत' खगोलिकी से संबंधित महत्वपूर्ण ग्रंथ है और इसमें प्रतिपादित खगोलीय सिद्धांतो का बाद के वैज्ञानिकों ने वैज्ञानिक अनुसंधानों में व्यापक प्रयोग किया। पंचसिद्धांत के अंतर्गत सूर्यसिद्धांत का सर्वाधिक उपयोग हुआ।

चिकित्सा–शास्त्र के क्षेत्र में तो भारत को प्रथम अन्वेषणकर्ता होने का गौरव उपलब्ध है। इस क्षेत्र में भारत की मौलिक अनुसंधानों में भी भारत की उल्लेखनीय भूमिका रही है। वैदिक संहिताओं के चारों वेदों में से 'अथर्वेद' विश्व का प्राचीनतम चिकित्सा–शास्त्रीय ग्रंथ है। इस ग्रंथ में विभिन्न बीमारियों के लक्षणों, बीमारियों के कारणों एवं उनके निराकरण के उपायों का वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ में लिखा है कि विभिन्न प्रकार की बीमारियों के लक्षणों एवं कारणों का अध्ययन किया जाता था और उनके इलाजों की विधि खोजी जाती थी। जड़ी–बूटियों, खनिज–पदार्थों, फलों एवं फूलों पर परीक्षण किए जाते थे तथा फिर उनसे इलाज की औषधियाँ तैयार की जाती थीं। वर्तमान विश्व में भी चिकित्सा की दो ही मुख्य विधियाँ ही प्रचलित हैं – औषधीय चिकित्सा एवं शल्य चिकित्सा (सर्जरी)। इन दोनों ही चिकित्सा–पद्धतियों का जन्मदाता भारत ही है। आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व ही 'सुश्रुत संहिता' तथा चरक ने 'चरक संहिता' की रचना की थी। इनमें से सुश्रुत संहिता में सुश्रुत ने मोतियाबिंद, पथरी और कई अन्य रोगों का शल्योपचार बताया है। उन्होनें इसमें शल्य क्रिया के बहुत सारे उपकरणों का उल्लेख किया है, जिनकी संख्या 121 तक है। रोगों से मुक्ति लिए सुश्रुत ने आहार और सफाई पर ज़ोर दिया है। 'चरक संहिता' भारतीय चिकित्सा शास्त्र का विश्व कोश है। इसमें ज्वर, कुष्ठ, मिरगी, और यक्ष्मा के अनेक भेदोपभेदों का वर्णन है। इस ग्रंथ में उन पेड़–पौधों का विशद् वर्णन है, जिनका औषधि के रूप में उपयोग होता है। प्राचीन औजारों के निर्माण में सफलता हासिल कर रखी थी और वे अंग–प्रतिरोपण (organ transplantation) – जैसी दुष्कर शल्य–चिकित्सा में निपुण थे। यूनानियों, अरबों, मिस्रवासियों आदि ने शल्य–चिकित्सा भारत से ही सीखी थी। अरबवासियों के माध्यम से भारत में यूनानी चिकित्सा का प्रवेश 13वीं – 14 वीं शताब्दी में हुआ था। वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में भी भारत में व्यापक अनुसंधान किए गए थे।

चिकित्सा शास्त्र के विकास के क्रम में भारत में रसायन–विज्ञान की भी स्वस्थ परंपरा विकसित हुई। औषधियों के खोज एवं आविष्कार के क्रम में स्वाभविक रूप से रसायन–विज्ञान का भी विकास हुआ है। इत्र, चीनी, कागज़, रंग आदि के उत्पादन में निश्चित रूप से रासायनिक सिद्धांतों का उपयोग किया जाता था। खनिज पदार्थों, धातुओं आदि के प्रयोग की क्रम में अनुसंधान भी व्यापक स्तर होते थे। तांबे के साथ टिन एवं जस्ते का मिश्रण कर बर्तनों के निर्माण की विधि भारत में यूरोपीय देशों से सदियों पूर्व ज्ञात थी और इस विधि का प्रयोग भी बहुप्रचलित था।

600 ई. पू. बुद्ध तथा महावीर के धार्मिक आंदोलन के काल में भारतवासी लोह एवं इस्पात के उपयोग में भी सिद्धहस्त हो गए। अब देश के विभिन्न क्षेत्रों में लोह एवं तांबे के अनेक शोध केंद्र खोल दिए गए। इस संदर्भ में भारतीयों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी लोहे के शोधन में किसी अन्य धातु की अत्यन्त न्यून मात्रा का उपयोग कर उसे अत्यन्त टिकाऊ एवं जंगरहित रखा जाता था। गुप्तकाल में आज से 1500 वर्ष पूर्व ही बना लोहस्तंभ (चंद्रगुप्त, विक्रमादित्य के समय निर्मित और वर्तमान में दिल्ली के महरौली नामक स्थल पर कुतुबमीनार में सुरक्षित) पूर्णरूपेण लोह–निर्मित है और उस पर मात्र मैंगनीज़ ऑक्साइड (Mno) की पतली परत चढ़ाकर उसे जंगरहित बनाया गया है। यह न केवल भारत का, अपितु सपूर्ण विश्व का ही दुर्भाग्य रहा है कि उसके बाद इस तकनीक के विकास को समझने के लिए हमारे पास कोई भी स्रोत उपलब्ध नहीं है।

भारतीयों द्वारा जिन तकनीकी विधियों एवं प्रविधियों की खोज एवं जिनका उपयोग आज से हजारों वर्ष पूर्व किया गया था, उनका उपयोग छोटे–मोटे परिवर्तनों के साथ आज भी हो रहा है। कृषि–क्षेत्र में औजारों एवं विधियों का उपयोग आज भी यथावत् हो रहा है। बीजों का संरक्षण, खेत की तैयारी, सिंचाई की व्यवस्था, फसल–चक्र, अन्न का भंडारण, सिंचाई व्यवस्था आदि तमाम विधियाँ प्राचीन काल से ही परंपरागत रूप से आज विद्यमान हैं। भारत में हजारों वर्ष पूर्व नहरों एवं कृत्रिम बांधों से सिंचाई की व्यवस्था की जाती थी। मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त ने जूनागढ़ के गिरनार के पास प्रसिद्ध झील बनवाई थी (सुदर्शन तडाग), जिसका कई परवर्ती शासकों द्वारा जीर्णोद्धार किया गया था।

भवन निर्माण एवं शिल्प में भी भारत की उपलब्धियाँ प्राचीन काल से ही उल्लेखनीय रही हैं। हड़प्पा–सभ्यता या सिंधु घाटी–सभ्यता की भवन मंदिर–मस्जिद–गुरूद्वारा–गिरिजाघर एवं प्रासाद–निर्माण के रूप में भवन–निर्माण कला के क्षेत्र में सिद्धहस्तता के उल्लेखनीय प्रमाण मिलते हैं। पाषाण–शिल्प में तो भारतीयों की दक्षता विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है। मौर्यकाल में जिस प्रकार से पाषाणों को काटकर एकाश्मीय (मोनोलिथिक) विशाल–स्तंभ बनाए गए हैं, उन पर जिस प्रकार की पॉलिश की गई है और उन्हें जिस प्रकार से एक स्थान पर निर्मित कर देश के विभिन्न क्षेत्रों में

सुरक्षित तरीके से ले जाकर स्थापित किया गया है, वह आश्चर्यजनक है। पर्वतों को काट कर जिस प्रकार मंदिरों एवं गुफाओं का निर्माण किया गया है। वह किसी भी आधुनिक अभियंता के लिए ईर्ष्या का विषय मात्र ही है। मूर्ति निर्माण कला तो अप्रतिम ही रही है भारतीयो की।

सड़क परिवहन और नौ–परिवहन के क्षेत्र में भी प्राचीन भारत समृद्ध रहा है। सिंधु सभ्यता काल में तो नावों एवं जहाजों का उपयोग होता ही था, मध्यकाल में 13वीं शताब्दी में ही यूरोपीय नाविक भारत में निर्मित जहाजों का ही उपयोग करते थे। सड़क निर्माण–कला भी अत्यधिक विकसित थी भारत में। सिंधुघाटी के नगरों में सड़कों का लंबा जाल बिछाया गया था। मध्यकाल में अफगान शासक शेरशाह द्वारा निर्मित ग्रांड ट्रंक रोड़ अपने आप में एक अनूठा उदाहरण है।

शस्त्रास्त्रों के निर्माण की भी भारत में सुदीर्घ एवं समृद्ध परंपरा रही है। सैंधव काल में तो कोई उल्लेखनीय प्रमाण नहीं मिलता, किंतु वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक इस क्षेत्र में व्यापक अनुसंधान हुए हैं। वैदिक – साहित्य एवं परवर्ती साहित्य में वर्णित तीर–धनुष, कृपाण, कटार, परशु, आदि शस्त्रास्त्र उच्च तकनीक को ही दर्शाते हैं। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के मानचित्र पर प्राचीन भारतवर्ष की उक्त उपलबधियाँ संतोषप्रद ही नहीं, गर्व करने लायक हैं।

○○○

7

मादक व नशीले पदार्थ और हमारा स्वास्थ्य

डॉ० दीपक कोहली

विश्व के डाक्टरों, वैज्ञानिकों व सर्वेक्षणकर्ताओं के निष्कर्षों के अनुसार जितने प्राणी प्रतिवर्ष बीडी, सिगरेट, तंबाकू व शराब आदि नशीले पदार्थों के सेवन के कारण मरते हैं उतने बंदूक की गोली, रोगाणुओं, विषाणुओं व अन्य सभी प्रकार की आपदाओं से मिला कर भी नहीं मरते? वैज्ञानिकों के अनुसार उबले हुए तंबाकू की पत्ती की एक बूंद ही एक बिल्ली के लिए व केवल दो बूंद एक कुत्ते के लिए पाँच मिनट में ही घातक सिद्ध हो सकती है। साथ ही चाय, काफी आदि में उपस्थित "कैफीन" ऐसा विष है जिसकी 1.5 ग्राम मात्रा भी यदि किसी पशु के अंदर इंजेक्शन द्वारा दी जाए तो वह घातक सिद्ध हो सकती है। वैज्ञानिकों ने इन व अन्य नशीले पदार्थों को ऐसे धीमे–विष की संज्ञा दी है जो शनैः–शनैः असाध्य रोगों के चंगुल में फसाकर न केवल तीव्र गति से मृत्यु की ओर धकेलता है अपितु उनके परिवारों को भी विनाश व इनसे होने वाले दुष्परिणामों की ओर ले जाता है।

हम आधुनिक अवश्य बनें। आधुनिक होना कोई बुरी बात नहीं है। हम सभी को आधुनिक बनना चाहिए, किंतु आधुनिकता का अर्थ समझे बिना दूसरों की अंधी नकल करके अपना व समाज का सर्वनाश करना अवश्य बुरा है। आधुनिकता का अर्थ यह तो कदापि नहीं है कि हम नैतिकता को ही भुला दें, गलत आचरण व अशिष्ट व्यवहार करें व जानते बूझते हुए धूम्रपान, शराब आदि ऐसे मादक पदार्थों का उपभोग करें जो हमें रोगों के चंगुल में फसाकर आयुक्षीण करने वाले हों और निरंतर मृत्यु की ओर शीघ्र गति से धकेलने वाले हों। इस तरह जानते बूझते हुए भी कि हर सिगरेट पीने पर आयु कुछ क्षण कम हो जाती है व एक बार शराब का सेवन आयु में 25 मिनट की कमी कर देता है, यदि कोई इन हानिकारक पदार्थों का उपभोग करता है तो उसे शनैः–शनैः आत्महत्या करने वाला, आत्महंता तो कहा जा सकता है, किंतु आधुनिक कदापि नहीं।

संभवतः धूम्रपान ही एक ऐसी लत है जो धूम्रपान करने वाले के साथ–साथ उसके परिवार, पत्नी, बच्चों आदि के स्वास्थ्य पर भी उतना ही दुष्प्रभाव डालती है जितना धूम्रपान करने वाले पर। मित्रों की कुसंगति, परिवार के बड़े व्यक्तियों की देखादेखी अथवा अन्य किसी भी कारण से धूम्रपान के चंगुल में फँसा कोई व्यक्ति भी यह तो कभी नहीं कहता कि वह स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है। वे यह जानते हैं कि धूम्रपान स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, किंतु वे इसे उतना हानिकारक नहीं मानना चाहते जितना यह वास्तविकता में है। वे इसे मूड ठीक कर आनंद देने वाला, मन–मस्तिष्क की एकाग्रता लाकर गुत्थी सुलझाने में सहायता करने वाला, चुस्ती–फुर्ती लाने वाला उच्च व अधिकारियों से संबंध बनाने में सहायता कर आर्थिक लाभ दिलाने में सहयोग करने वाला मानते हैं। संभवतः उनकी दृष्टि में आर्थिक लाभ के समक्ष स्वास्थ्य–हानि कोई विशेष महत्व नहीं रखती?

रसायनविज्ञान के अनुसार तंबाकू एक खतरनाक विष है। तंबाकू में निकोटिन, टार व कार्बन मोनोक्साइड नाम के तीन मुख्य हानिकारक पदार्थ होते हैं। निकोटिन शरीर के ऊतकों पर विशेषतः केंद्रीय तंत्रिका तंत्र दुष्प्रभाव डालता है, इससे रक्तदाब व हृदय गति में वृद्धि भी हो जाती है व्यक्ति को नशे की आदत पड़ जाती हैं। कार्बन मोनोऑक्साइड रक्त की लाल कोशिकाओं में ऑक्सीजन की मात्रा कम कर देती हैं। निकोटिन व कार्बन मोनोऑक्साइड के मिलने से लकवे या दिल का दौरे का आक्रमण हो सकता है। टार से फेफड़ा के कोमल रेशे खराब हो जाते है जब फेफड़ों में टार अधिक मात्रा में जमा हो जाता है तो कैंसर सकता है।

"इन्डियन सोसाइटी ऑन टोबैको ऐन्ड हैल्थ" के अध्यक्ष के अनुसार भारतवर्ष में 9 से 10 लाख व्यक्ति प्रतिवर्ष तंबाकू के सेवन से होने वाली रोगों के कारण मरते हैं। उनके अनुसार वर्ष 2025 तक विश्व में प्रतिवर्ष लगभग एक करोड़ पच्चीस लाख लोग तंबाकू के कारण होने वाले रोगों से मौत के मुँह में जाने लगेंगें। उनके अनुसार यह धारणा गलत है कि भारत में बनी सिगरेट, बीड़ी कम हानिकारक हैं। सिगार, पाईप, हुक्का आदि सभी वस्तुऐं समान रूप से हानिकारक हैं। कम टार तथा कम निकोटिन वाली तथा फिल्टरित सिगरेट भी किसी मायने में कम हानिकारक नहीं होती।

तंबाकू चबाने से मुँह का कैंसर व गले और जुबान का कैंसर भी हो सकता है। पेट व खाने की नली में फोड़ा भी हो सकता है जिससे भूख लगना कम हो जाती है व वजन भी घटता है। तंबाकू का सेवन करने वाले लोगों और उनके बच्चों में छाती के रोग होने की संभावना भी अधिक होती है।

भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् की रिपोर्ट के अनुसार महिलाओं पर तंबाकू का काफी गंभीर असर होता है गर्भ–निरोधक गोलियाँ खाने वाली महिलाओं द्वारा धूम्रपान करने से उनमें दिल का दौरा पड़ने, पैर की नसें फूलने तथा लकवे का खतरा 10 गुना अधिक बढ़ जाता है। महिलाओं में गर्भ पात और मरा हुआ बच्चा पैदा होने की संभावना

भी तीन गुना बढ़ जाता है। बच्चा समय से पहले पैदा हो सकता है जिससे उसका वजन कम होता है और वह बीमार रह सकता है। इस परिषद् के अनुसार यदि तंबाकू के उपयोग में मात्र 20 प्रतिशत कमी कर दी जाए तो सन् 2025 तक 48 हजार से भी अधिक लोगों को कैंसर से बचाया जा सकता है।

एक अध्ययन के अनुसार नित्य 20 सिगरेट तक पीने वाली गर्भवती महिला के बच्चे की मृत्यु होने की आंशका सामान्य से 20 प्रतिशत बढ़ जाती है, जबकि 20 से अधिक सिगरेट पीने पर यह खतरा 35 प्रतिशत बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त, तंबाकू के अधिक सेवन से आँख का दृष्टिपटल (रेटीना) और वृक्तंत्रिका (ऑप्टिक नर्व) प्रभावित होने लगती है जिससे आंखों की ज्योति कम होने लगती है।

सिगरेट के धुएं के रासायनिक विश्लेषण से पता चला है कि धूम्रपान के दौरान मुँह से सीधे खीचें गये धुएं की तुलना में धूम्रपान न करने वाले द्वारा श्वसन के द्वारा लिए गए धूंए में कम से कम पाँच गुना कार्बन मोनोऑक्साइड, तीन गुना टार और निकोटिन, चार गुना बेंजोपाइरिनेस और 46 गुना अमोनिया होती है।

इसके अतिरिक्त इसमें नाइट्रोसोअमीन, बेन्जीन आदि हानिकारक पदार्थ भी मुँह से धूम्रपान के प्रभाव की तुलना में अधिक मात्रा में होते हैं जो श्वसन के द्वारा आस–पास बैठे, हुए धूम्रपान न करने वालों के शरीर में जाकर उन्हे भी अपना दुष्प्रभाव का शिकार बनाते हैं और इसका दुष्प्रभाव उन व्यक्तियों पर कम न होकर कुछ अधिक ही पड़ता है। एक रिपोर्ट अनुसार अनेक विकसित देशों में "निष्क्रिय धूम्रपान" मौत का एक प्रमुख कारण बनता जा रहा है। एक विशेषज्ञ के अनुसार अगर सिगरेट का धुआँ आठ पीने वालों की जान लेता है तो साथ में एक न पीने वाले व्यक्ति की जान भी जाती है। किसी हवादार कमरे में यदि एक घंटे में सात सिगरेट पी जाएं तो वहाँ की हवा में कार्बन मोनोऑक्साइड की मात्रा 90 पी०पी०एम० (भाग प्रति दस लाख भाग) हो जाएगी जबकि उद्योगों में भी 50 पी०पी०एम० से अधिक कार्बन मोनोऑक्साइड की अनुमति नहीं दी गई है।

विकासशील देशों में पाँच साल के बच्चों की मृत्यु का मुख्य कारण श्वसन–संबंधी बीमारी ही होता है। इंग्लैंड में हर वर्ष एक हजार व अमेरिका में पाँच हजार धूम्रपान न करने वालों की मृत्यु निष्क्रिय धूम्रपान अर्थात सिगरेट के धुएं के श्वसन द्वारा के शरीर में पाए से ही होती हे। धूम्रपान करने वाले के पास बैठने से ही पर्यावरणीय तंबाकू का धुआं सक्रिय धूम्रपान द्वारा होने वाले रोग–दोषों को पैदा कर सकते हैं। अतः सिगरेट न पीना ही काफी नहीं है। सिगरेट पीने वालों से दूर रहना भी जरूरी है।

विश्व के हर कोने में बढ़ रही हत्याओं, बलात्कार व अन्य क्रूरतम घटनाओं में मादक द्रव्यों का सबसे प्रमुख हाथ है। मादक द्रव्यों–स्मैक, हेरोईन, चरस, गांजा, अफीम, शराब आदि का शिकार व्यक्ति इन्हें

प्राप्त करने के लिए हर प्रकार का दुष्कर्म करने को तैयार हो जाता है क्योंकि इन पदार्थ के सेवन से मनुष्य की विवेक बुद्धि नष्ट हो जाती है और अच्छे–बुरे का ज्ञान नहीं रह पाता। इन पदार्थों को पहली बार लेने में प्रायः सभी हिचकिचाते हैं किंतु अपने अहं, झूठी आधुनिकता, साथियों के बहकावे में आकर, दोस्तों के आगे अपनी बहादुरी दिखाने की धुन में अथवा इस जिज्ञासा में कि जरा चख कर तो देखें कि आखिर यह बला क्या है, युवा लोग इन मादक पदार्थों का एक बार सेवन कर बैठते हैं और फिर इस तरह इन के चंगुल में फस जाते हैं कि इन की लत उन का सर्वनाश ही कर देती है। कुछ व्यक्ति नींद की दवाओं के माध्यम से मादक पदार्थों के आश्रित बन जाते हैं फिर इन दवाओं को छोड़ नहीं पाते। नशीले पदार्थों से तो केवल पलायनवाद को ही बढ़ावा मिलता है। साहसी व समस्याओं से डट कर लोहा लेने वाले वीर पुरूष इन मादक पदार्थों का आश्रय कभी नहीं लेते।

अनेक वैज्ञानिकों व डाक्टरों ने शराब या मदिरा को सबसे निकृष्ट वस्तु माना है, जो हतोत्साह व लकवा जैसे रोगों के लिए उत्तरदायी है। इसका निशाना शरीर का कोई एक अंग व कार्य–प्रणाली न होकर पूरा शरीर ही होता है। अनेक वर्षों का शोध यह बताता है कि यह जिगर, गुर्दे, दिल व रक्त संचालन क्रिया के लिए हानिकारक है व रक्तदाब, मोटापा, त्वचा के रोगों व कैंसर आदि को जन्म देती है। वैज्ञानिकों की खोज के अनुसार मादक पदार्थों के कुछ दुष्परिणाम तुरंत प्रभाव डालने वाले व कुछ लंबे समय में प्रभाव उत्पन्न करने वाले होते हैं। सबसे प्रमुख यह कि इनसे पाचन तंत्र व तंत्रिका तंत्र खराब हो जाते हैं नवजात शिशुओं में भी इनका दुष्प्रभाव पाया जाता है। विख्यात डा० एमिल ब्रोगन ने अपनी पुस्तक, "टॉक्सिकोलोजी ऑफ एल्कोहॉल" में लिखा है कि किसी अन्य वजह से उतनी मौतें नहीं होती व उतने शारीरिक व मानसिक रोग नहीं पनपते, जितने मदिरा से होते हैं। यह वह खतरनाक जहर है जो शरीर के हर ऊतक पर दुष्प्रभाव डालता है। शराब कितनी ही थोड़ी मात्रा में क्यों न पी जाए, वह मानसिक शक्ति को खराब कर देती है, क्योंकि यह दिमाग के तंत्रिका केंद्रों को अशक्त कर देती है। जिससे बुद्धि की भले बुरे का बोध करने की क्षमता तथा सहन शक्ति जाती रहती है।

एक यहूदी कहावत है, "जहाँ शैतान नहीं जा सकता, वहाँ शराब को भेज देता है।" इतिहास साक्षी है कि सुरा ने अनेकों राजाओं, नवाबों को अपने वश में कर के उनका राज्य नष्ट कराया। अनेकों परिवार नष्ट हुए व कितने ही घर उजड़ गए, जमीन–जायदादें बिक गई, लड़ाई–झगड़े व क्लेश हुए। कुछ व्यक्ति यह समझते हैं कि शराब में कुछ पौष्टिक तत्व होते हैं। किंतु खोजों के परिणाम बताते हैं कि यह पाचनतंत्र में गड़बड़ी कर देती है, भोजन बगैर पूर्ण उपयोग के ही निकल जाता कि व शरीर को निरोग रखने के लिए अत्यधिक आवश्यक खनिज जिंक व अन्य खनिज नष्ट हो जाते है। शराब पीने वालों में प्रायः विटामिन A, B_6, B_{12}, C व D तथा खनिज, आयरन व मैंगनीज की भी कमी हो जाती है।

आधुनिकता व दिखावे की होड़ में अथवा झूठे आनंद की मृंग मरीचिका की तलाश में आज हम जिन अनेक हानिकारक पदार्थों को अच्छा व उत्साह लाने वाला मानते हैं उनमें चाय, काफी व अनेक सौम्य पेय का भी प्रमुख स्थान है। इन पदार्थों में उपस्थित कैफीन व अन्य रासायनिक पदार्थ शरीर को अनेक प्रकार के रोगों की ओर धकेलते हैं। इन पेय पदार्थों में कोई पोषक तत्व तो होता ही नहीं, उल्टे यह शरीर की क्रिया को हानि पहुँचाते हैं व हमारे शरीर के लिए अत्यधिक आवश्यक विटामिनों को नष्ट कर सकते हैं। "कैफीन से रक्तदाब व दिल की धड़कन बढ़ती है। एक बार यह केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को उद्दीप्त करती सी प्रतीत होती है किंतु अंततः हानि ही पहुंचाती है। डॉ० ए०डी० ट्रूमेन ने अपने लेख "Coffe - break may break you" में लिखा है। यह पदार्थ मस्तिष्क तंत्रिका तंत्र, हृदय तथा पाचन–प्रक्रिया को गंभीर नुकसान पहुँचाता है। "हारवर्ड स्कूल ऑफ पब्लिक" हेल्थ के डॉ० ब्रेम मैकमोहन तथा उनके सहयोगियों ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि दो कप कॉफी प्रतिदिन पीने वालों में अग्न्याशयी कैंसर की आशंका आम लोगों से 18 गुना अधिक होती है। इसी टीम ने इंग्लेंड के 11 अस्पतालों में 360 कैंसर रोगियों का परीक्षण किया और पाया कि ये सब काफी का सेवन करते थे।

इस प्रकार ये स्पष्ट है कि धूम्रपान, शराब, चरस, गाँजा, अफीम आदि नशीले-मादक पदार्थों का सेवन, चाय, कॉफी आदि पर निर्भरता कुछ ऐसी बातें हैं जो हमें लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक पहुँचा रही हैं। अच्छे स्वास्थ्य की कामना करने वाले हर व्यक्ति को इन पदार्थों का उपभोग व इनकी निर्भरता त्याग कर आत्म निर्भरता अपनानी चाहिए क्योंकि अप्राकृतिक जीवन तथा असंयम रोग की जड़ है और संयमित आहार–विहार स्वास्थ्य की कुजी है।

○○○

8

वृक्षः मानवता के परममित्र

डॉ० मधुज्योत्स्ना

वृक्ष सृष्टि की अनुपम कृति है। मानव का विकास इन्ही वृक्षों से भरे हुए वनों में ही हुआ है। आज के आधुनिक मानव का पूर्वज इन्ही वृक्षों के आश्रय में रहकर जीता था, जो आगे चलकर आज का आधुनिक मानुषी रूप पा सका। लेकिन मनुष्य इतना कृतघ्न है कि विकास और आधुनिकता के झूठे भ्रम में अपने विकास के मूल संरक्षक और आश्रयदाता वृक्षों को ही समूल नष्ट करने पर आमादा है, जिसके चलते प्राकृतिक प्रकोप के रूप में पृथ्वी पर कहीं बाढ़ आ रही है, तो कहीं सूखा पड़ रहा है। सुनामी, आंधी, तूफान, प्रभंजन झंझावात, बादलों का फटना, भूक्षरण और भौम जल की कमी जैसे प्रलयंकारी प्रकोप के मूल में कहीं न कहीं इन पर्यावरणमित्र वृक्षों का विनाश ही है।

विकास की आड़ में मनुष्यों के हस्तक्षेप के बावजूद वृक्षों ने अपने मानवहितैषी स्वभाव में किसी प्रकार का बदलाव नहीं किया, और पृथ्वीवासियों कों पूर्ववत् भोजन, आवास, वस्त्र और औषधि देकर जीवन देते रहे। जीवन–दाता इन वृक्षों और वनस्पतियों के विषय मे मनुष्य ने समय–समय पर शोध और प्रयोग से अच्छी तरह जान लिया कि प्रकृति में पाई जाने वाली समस्त वनस्पतियों में किसी न किसी रोग–निवारक, औषधीय पोषकीय तत्व का अनिवार्य रूप से निवास होता है। यह जानकारी गुप्त काल के महान् भारतीय चिकित्सक कुमारभृत्य जीवक से संबंधित एक घटना से भी प्रमाणित होती है। इस महान भारतीय चिकित्सक ने जब प्राचीन तक्षशिला विश्वद्यिालय से आयुर्वेद में स्नातकोत्तर स्तर की पढ़ाई पूरी कर ली, तब उनके शिक्षकों ने परीक्षा लेकर उन्हे मुक्त करने की बजाए उन्हे विश्वविद्यालय में ही रोक रखा था। जीवक ने अपने शिक्षकों से परीक्षा लेकर उपाधि प्रदान कर विश्वविद्यालय से मुक्त करने का आग्रह किया। उनके आग्रह पर उनके शिक्षकों ने परीक्षा के रूप में उन्हे तक्षशिला के निकटवर्ती वनक्षेत्र में पाई जाने वाली ऐसी वनस्पतियों को खोज कर लाने के लिए कहा जो औषधीय तत्वों से रहित हों। विलक्षण प्रतिभा के स्वामी जीवक कई दिनों तक

तक्षशिला के वन–क्षेत्र में भटकते रहे किंतु उन्हें एक भी ऐसी वनस्पति नहीं मिली दिखी जिसमें किसी तरह के औषधीय तत्व न हो। कई दिनों के वन–भ्रमण के बाद भी वे खाली हाँथ ही लौटे। तो आचार्यों ने उन्हें परीक्षा में उत्तीर्ण घोषित करते हुए कहा "अब जीवक की शिक्षा पूर्ण हो गई है और वे उच्चस्तरीय, समर्थ आयुर्वेद चिकित्सक हैं।" जातक कथाओं में वर्णित इस घटना से स्पष्ट हो जाता है कि समस्त वनस्पतियों के किसी न किसी भाग में उपयोगी औषधि तत्व का निवास अनिवार्य रूप से होता है।

वनस्पतियों के विषय में इसी तरह की बातें महान भारतीय आचार्यद्वय सुश्रुत एवं चरक ने भी कही है कि "जो वनस्पति जिस क्षेत्र में पाई जाती है।, वह उस क्षेत्र में विशेष प्रभावकारी होती है।" इन्हीं वृक्षों से घिरे वन–क्षेत्र में बने आश्रमों में तपस्या और साधना से ऋषिमुनियों ने भारतीय समाज को ज्ञान–विज्ञान से समृद्ध किया। आज भी यहाँ वृक्षों से आवृत्त वनक्षेत्रों में अनेक प्राचीन जनजातियों के समूह निवास करते हैं। ये दुर्लभ मानव प्रजातियाँ आज भी वन प्रांत के वृक्षों पर ही पूरी तरह आश्रित हैं।

वृक्षों की विशेषताओं के विषय में चिपको आंदोलन के प्रणेता, प्रख्यात पर्यावरणविद् सुंदर लाल बहुगुणा का कहना है कि 'आगे आने वाले दिनों के बदलते परिवेश में भोजन के लिए हमें कृषि फसलों की जगह वृक्षों पर ही निर्भर होना पड़ेगा।' आधुनिक युग के वैज्ञानिकों ने अपने शोध एवं अन्वेषण से भारतीय उपद्वीप में पाये जाने वाले वृक्षों के विभिन्न अंगों में औषधि एवं पोषक तत्वों की उपस्थिति को प्रमाणित किया है। भारतीय वृक्षों में पाए जाने वाले रोगनिवारक तत्वों के चलते दुनिया के तमाम विकसित देशों के वैज्ञानिकों ने अर्जुन और नीम जैसे भारतीय मूल के वृक्षों पर फर्जी ढंग से पेटेन्ट प्राप्त इन औषधीय तत्वों पर बलात् कब्जा करने की कोशिश की है।

उपरोक्त महापुरूषों और आधुनिक वैज्ञानिकों के संदेशों एवं तमाम निषेधों के बावजूद हमने स्वार्थ के वशीभूत होकर वृक्षों का खूब विनाश किया और आज भी नष्ट करने में लगे हैं, जबकि ये वृक्ष पूर्ववत् आज भी जीव–मात्र का यथावत जीवन दे रहें हैं।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति, विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं और संस्कृतियों में भी अग्रणी है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति का विकास वृक्षों से आच्छादित वनों में ही हुआ। भारतीय मनीषियों ने वृक्षों से घिरे वनों में स्थित आश्रमों में ही तपस्या से प्राप्त ज्ञान–विज्ञान को ही वेदों, उपनिषिदों और अन्य ग्रंथों में संगृहीत कर विश्व–समुदाय के लिए कल्याणकारी रचना के रूप में प्रस्तुत किया।

उनका संपूर्ण कल्याणकारी ज्ञान इन्ही वृक्षों के सान्निध्य में ही धनीभूत होकर मूर्त स्वरूप पा सका। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि भारतीय मनीषियों ने वृक्षों के इस महान योगदान का अपने मनन, चिंतन द्वारा अच्छी तरह अनुभव किया। यही नहीं भारतीयों मनीषियों ने अपने

दीर्घकालिक मनन, चिंतन और शोध के द्वारा इनमें पाए जाने वाले गुणों, तत्वों और विशेषताओं पर व्यापक प्रकाश डालते हुए उनकी औषधीय विशेषताओं को भी प्रस्तुत किया जिसके आधार पर ही विश्व की सर्वाधिक प्राचीन चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद के 'द्रव्यगुण' पक्ष का निर्माण हुआ। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने विभिन्न अवसरों पर लोकोपकारी वृक्षों के अनेक रूपों पर चर्चा की है, जिन्हें प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धति के आयुर्वेद ग्रंथों में देखा जा सकता है।

भारतीय मनीषियों के द्वारा वेदों, उपनिषदों और स्मृतियों सहित अनेक प्राचीन धर्म ग्रंथों में वृक्षों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए उनकी पूजा–अर्चना की है।

यजुर्वेद में फलदार, छायादार और औषधीय वृक्षों के लिए पर्याप्त आदर–सम्मान 'रूद्र अष्टाध्यायी" में 'वनानां पतये नमः', 'वृक्षाणां पतये नमः', 'औषधीनां पतये नमः' जैसी अभ्यर्थनीय बातें कहीं गई हैं। यहाँ रूद्र (शिव) से निम्न प्रार्थना की गई है–

या ते रूद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाह भेषजी।

शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे।।

यजुर्वेद के इस मंत्र में रुद्र (शिव) (जिन्हें यजुर्वेद में ही वृक्ष भी कहा गया है) के विषय में चर्चा करते हुए वर्णित किया गया है कि रुद्र हमारी रक्षा करें और हमारे प्रत्येक दिन को और सुखकर बनाए।

यजुर्वेद में ही अन्यत्र कहा गया है कि तुम वृक्षों को जितना बढ़ाओगे, वृक्ष भी तुम्हें उतना ही बढ़ायेंगे – *'नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो।'*

इसी प्रकार ऋग्वेद के मंत्र मं 6/48/17 में वृक्षों के संरक्षण का निर्देश देते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार दुष्ट बाज पक्षी अन्य पक्षियों की गर्दन मरोड़कर कष्ट देने के साथ ही उनकी हत्या कर देता है। तुम उस बाज पक्षी जैसा बनकर वैसे ही व्यवहार से वृक्षों को दुःख मत दो, इनका विनाश और उच्छेदन मत करो। ये वृक्ष पशु–पक्षियों और जीव–जंतुओं को आश्रय प्रदान करते हैं। ऋग्वेद की यह ऋचा इस बात का प्रमाण है कि भारतीय ऋषियों और तत्वेत्ताओं ने वृक्षों की उपयोगिता को अच्छी तरह समझते हुए जनसामान्य को उनके प्रति उचित दृष्टिकोण अपनाने का निर्देश दिया है।

इसी प्रकार अथर्ववेद में एक स्थान पर कहा गया है 'हे पृथ्वी तुम्हारे ऊपर लहराने ये वन सुखकारी हों। अथर्ववेद के ही एक अन्य मंत्र में शमी और पीपल के वृक्ष की विशेषताओं की चर्चा करते हुए कहा गया है–

शमीमश्पत्थ आरुढ़स्तत्र पुंसवनं कृतम्।

तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्री वा भरामसि।।

अथर्ववेद के इस श्लोक में शमी और पीपल के वृक्ष की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इन वृक्षों की पूजा–अर्चना से बाँझ महिला भी गर्भ धारण कर पुत्रवती होने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेती है।

इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के वर्णित विभूतियों (10/26) में पीपल के वृक्ष के विषय में भगवान् श्रीकृष्ण कहे हैं – 'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्' अर्थात वृक्षों में मैं पीपल हूँ। यह कथन भारतीय संस्कृति में वृक्षों के मान–सम्मान और महत्व को प्रमाणित करता है।

भागवत में वृक्षों के महत्व की चर्चा करते हुए कहा गया है–

आहो एषां दरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम्।

सुजनस्येव धन्या महीरुहा येभ्यो निराशं यान्ति नार्थिनः।।

अर्थात् समस्त जीवों को जीवन देने वाले इन वृक्षों का जन्म पाना कितना सार्थक है, भद्रजनों के समान ये कितने धन्य हैं। इसके पास से कोई याचक निराश नहीं जाता।

पुत्र–पुष्प–फल–छाया–वल्कल–दारुभिः।

गंधनिर्यास–भस्मास्थिवनेः कामान् वितन्वते।।

अर्थात् ये वृक्ष अपने पत्ते फूल, छाया, छाल, जड़ काष्ठ गंध गोंद, राख, कोयले और टहनियों जैसे समस्त अंगों और उत्पादों से समस्त लोंगों की कामना को पूरा करते हैं।

मूलं ब्रह्मा, त्वचा विष्णुः, शाखा रुद्रो महेश्वरः।

पत्रे–पत्रे हिह्मा देवाश्च वृक्षराज नमोस्तु ते।।

अर्थात् तुम्हारे मूल में ब्रह्मा, देह में विष्णु, डालियों मे महेश्वर तथा पत्ते–पत्ते पर देवताओं का निवास है। हे वृक्षराज तुम्हें प्रणाम है।

यादव भूमंडल धत्ते सशैलवनकाननम्।

तावत् तिष्ठति मेदिन्याम् संततिः पुत्रपौत्रिकी।।

अर्थात् जब तक यह पृथ्वी हरे–भरे वनों, पर्वतों से आच्छादित रहेगी तब तक वह मानव संतानों की सभी जरूरतों को पूरा करती रहेगी।

स्कंदपुराण में भारत के राष्ट्रीय वृक्ष बरगद के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है–

वटमूलोस्थियो ब्रह्मा, वटमध्ये जनार्दनः।

वटाग्रे तु शिवो देवः सावित्रि वटसंश्रिता।।

वट सिंचामि ते मूलं सलिलैरमृतौपमैः।

यथा शाखाप्रशाखाभिर्वर्द्धसे त्वं महीतले।।

तथा पुत्रैश्च पौत्रैश्चर्यसम्पन्न भवम्यहम्।।

अर्थात् वट वृक्ष के मूल में ब्रह्मा मध्य में विष्णु, अग्रभाग में भगवान शंकर निवास करते हैं। समग्र वटवृक्ष पर सावित्री का निवास है। हे वटवृक्ष! मैं अमृततुल्य जल से आपका सिंचन करती हूँ, आपसे याचना करती हूँ कि जिस प्रकार आपकी शाखा–प्रशाखा निरंतर वृद्धि कर रही है उसी प्रकार मुझे पुत्र–पौत्र सहित अंखंड सौभाग्य की प्राप्ति हो। इसी प्रकार मत्स्यपुराण में कहा गया है।–

दश कूपसमा वापी, दश वापीसमो ह्रदः।

दश ह्रदसमो पुत्रम् दश पुत्रसमो द्रुमः।।

अर्थात् एक बावड़ी इस कुओं के समान होती है। दस बावड़ी मिलाकर एक तालाब मे तुल्य होते

हैं। दस तालाबों के तुल्य एक पुत्र है, दस पुत्र मिलाकर एक वृक्ष के तुल्य होते हैं।

इसी प्रकार वाराहपुराण में वृक्षों के विषय में कहा गया है–

इन्धनार्थं यदानीतं अग्निहोत्रं तदुच्यते।

छायाविश्रामपथिकैः पक्षिणां निलयेन च।।

पत्रमूलत्वगादिरूपं, औषधार्थं तु देजिनाम्।

उपकुर्वन्ति वृक्षस्य, पंचयज्ञ स उच्चयते।।

मानव समुदास पर वृक्षों के पाँच उपकार दैनिक पंचमहायज्ञ के सदृश है। ये गृहस्थों को ईधन, पथिकों को शीतल छाया तथा विश्राम के लिए आश्रय देकर, पक्षियों के लिए आवास बनाकर पत्ती, जड़ तथा छाल के रूप में औषधि प्रदान कर समस्त जीवों को उपकृत करते हैं। इसी क्रम में 'कूपतड़ागखनन तदुत्सर्गविधान' में एक श्लोक में कहा गया है:

वृक्षं रोपरियतुर्वृक्षाः परलोके पुत्रा भवन्ति।

वृक्षप्रदो वृक्षप्रदा वृक्षप्रसूनैर्देवान् पिप्रीसति।।

फलैश्च तिथीन् छायया चाभ्यागतान्

देवे वर्षत्युकदेन पितृन्।

पुष्पप्रदानेन श्रीमान् भवति,

कूपतड़ागेषु देवतातनेषु वै।।

अर्थात् जो मनुष्य मृत्युलोक में वृक्षारोपण करते हैं उनके द्वारा लगाये गए वे वृक्ष परलोक में पुत्र के रूप में जन्म लेते हैं। वृक्षों का दान करने वाला मनुष्य वृक्षों पर खिलने वाले फूलों से देवताओं को प्रसन्न करता है। जब वर्षा होती है तो छाया द्वारा आगतों और जलसे अपने स्वर्गवासी पितरों को खुश करता है। पुष्प प्रदान करने के कारण उसके यश में बढ़ोत्तरी होती है। वह समृद्धशाली बन जाता है।

आयुर्वेदशास्त्र में कायचिकित्सा के जनक महर्षि चरक ने चरकसंहिता में कहा है:

"यस्य देशस्य यो जन्तुः तदौषधहितम्।"

जो मनुष्य जिस क्षेत्र में जन्म लेता है, उस क्षेत्र में उत्पन्न वनस्पतियाँ उसके लिए औषधि के रूप में विशेष उपयोगी होती है।

आचार्य विष्णु शर्मा के चर्चित ग्रंथ 'पंचतंत्र' में वृक्षों के बारे में कहा गया है:

वृक्षांवृक्षांच्छित्वा पशून् हत्वा, कृत्वा रुधिरकर्दनम्।

तथैव गम्यते स्वर्ग नके केन गम्यते।।

यदि वृक्षों के विनाश से, पशुओं की हत्या से, रक्त को कीचड़ बनाकर ही स्वर्ग प्राप्त होता है तो नर्क किसे प्राप्त होगा।

इसी प्रकार 'विक्रमचरित' में वक्षों के समाजसेवी चरित्र का वर्णन करते हुए बताया है–

छायामन्यस्य कुर्वन्ति तिष्ठन्तिस्वयमातपे।

फलान्यपि पराथयिवृक्षाः सत्पुरुषा इव।।

वृक्ष स्वयं धूप सहकर भी दूसरों को छाया प्रदान करते हैं। उनके फलों का उपयोग भी दूसरे लोग ही करते हैं। वास्तव में वृक्ष स्वभाव से ही सज्जनों की तरह परोपकारी होते हैं। इसी प्रकार 'उपदेशतरंगिणी' में वृक्षों के उपकार की चर्चा करते हुए कहा गया है–

मंजरीभिः पिकनिक रजोभिरलिनं फलैश्च पान्थगणम्।

मार्गसहकारसततं, उपकुर्वन् नन्दतु विरकालम्।।

हे वृक्षों! तुम युग–युग जियों, आनंदपूर्वक रहो, क्योंकि तुम अपनी मंजरियों से कोयलों को, पराग से भौरों को तथा फूलों से पथिकों को हमेशा उपकृत करते रहते हो। इसी प्रकार 'भामिनीविलास' में वृक्षों के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए कहा गया है:

धत्ते भरं कुसुमपत्रफलावलीनां

धर्मव्यथां वहति शतीभवारूजश्च।

यो देहमर्पयति चान्यसुखस्य हेतो–

वदान्यगुरवे तरवे नमोऽस्तु।।

हे वृक्षों! आप फूलों, पत्तों और फलों के समूह का भार सहते हैं, धूप से लोगों को राहत दिलाकर उनकी पीड़ा दूर करते हैं, ठंड के कष्ट से छुटकारा दिलाते हैं। इस प्रकार दूसरों के कष्ट दूर करने के लिए अपने आपको समर्पित कर रखा है, इन्ही गुणों के कारण आप उदार पुरुषों के गुरु सदृश है। अतः हे तरुवर! आपको हमारा प्रणाम है।

'भामिनीविलास' के ही एक अन्य श्लोक में कहा गया है–

उद्यानदेवालयपितृवनवाल्मीकमार्गचितिजाताः।

कब्जोहर्वशुष्ककष्टावल्लीवन्दाक युक्ताश्च।।

बहुविहगालय कोटरपवनानता पीड़िताश्च ये तरचः।।

ये च स्युः स्त्रीसंज्ञा न ते शुभश्चिक्रिके त्वर्ये।।

वृक्ष हत्या को वर्जित करते हुए इस श्लोक में कहा गया है किम बाग, देवालय, पितृवन, दीमक की बांबी, लताओं को सहारा देने वाले, पक्षियों के आश्रसस्थल वाले, चैत्य राजमार्ग आश्रम व नदियों के संगम पर स्थित स्त्री संज्ञा वाले किसी भी वृक्ष को किसी भी स्थिति मे नहीं काटना चाहिए।

महाकवि कालिदास अपने विश्वप्रसिद्ध ग्रंथ 'रघुवंश' के 13/46 श्लोक में वृक्षों के महत्व पर प्रकाश डालते कहते हैं–

छायाविनीध्विपरिश्रमेषु भूयिष्ठसम्भाव्यफलेष्वमीषु ।

तस्यातिथीनामधुना सपर्या स्थिता सुपुत्रेष्विव पादपेषु।।

अपनी छाया मात्र से रास्ते की थकावट से छुटकारा दिलाने वाले, ढ़ेरों स्वादिष्ट फलों से भरे हुए, अच्छी संतानों के समान आश्रयस्थलों पर स्थित वृक्षों पर ही वहाँ के अतिथियों के सत्कार का दायित्व है।

'उपदत्त विनोद' में वृक्षों को संतानों से भी उत्तम बताते हुए कहा गया है कि

बहुभिर्वद किं जातैः पुत्रैरथर्मार्थवर्जितैः।

वरमेके पथि तरुपत्रे विश्रमते जनः।।

ढेरों अधर्मी और दरिद्र संतानों से भले रास्ते के वे पेड़ हैं, जिनकी छांव में बैठकर पथिकजन अपनी थकावट मिटाते हैं।

इसी प्रकार एक अन्य श्लोक में कहा गया है कि जिस वृक्ष पर पक्षियों के आवास हो, जो देवालय और श्मशान पर स्थित हो, जिनसे दूध या रस बहता हो, ऐसे वृक्षों के अलावा नीम जैसे उपयोगी वृक्षों को काटा नहीं जाना चाहिए।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत के ऋषियों ने अपने जीवन में वृक्षों को विशेष स्थान देकर सभी कालों में विभिन्न अवसरों पर उनकी पूजा–अर्चना, मान–सम्मान का प्रावधान कर, उनके एहसानों को स्वीकार किया है। यह इस बात का द्योतक है कि हमारे पूर्वजों ने अपने मनन, चिंतन और अध्ययन से संपूर्ण जीव जगत् के लिए वृक्षों की महत्ता और उपयोगिता को अच्छी तरह समझ लिया था।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने पूर्वजों के अनुभवों से प्रेरणा लेकर सृष्टि के संरक्षक इन वृक्षों के महत्व को समझते हुए जनसामान्य में उसका प्रचार–प्रसार कर वृक्ष सेवा द्वारा मानवता के संरक्षण से संलग्न हों।

○○○

9

भारत की घटती जैव विविधता

डॉ० नरेश कुमार

प्रकति ने विविध जीवों, वनस्पति–पादप–वृक्षों तथा भौगोलिक संपदाओं का मुक्त–हस्त उपहार दिया है। इन सबका सह अस्तित्व मानव के लिए लाभकारी, कल्याणकारी एवं कुछ स्थितियों में अनिवार्य है। खेद का विषय है कि आज का मानव इस विशाल प्राकृतिक देन के विनाश के पथ पर अग्रसर है। मानव के इन्ही स्वार्थप्रेरित कृत्यों के कारण अंसख्य प्राणिगत पशु–पक्षी एवं वनस्पतियाँ विलुप्ति के कगार पर है। इस लेख में भारत में पशु–पक्षियों की घटती हुई जनसंख्या के प्रति सचेत किया गया है।

जंगलों के कटान के कारण भारत में वन्य जीवों के अस्तित्व पर मंडराता खतरा और गहराता जा रहा है। वन्य जीव विशेषज्ञों के अनुसार कई जातियों पर खतरे की संभवनाऐं बढ़ी हैं। उदाहरणार्थ चीता और गुलाबी सिरवाली बत्तख जैसी जाति भी लुप्त हो रही है।

कम होते जीव

भारत में वन्य क्षेत्र के घटने से जीवों के आश्रय स्थल समाप्त होते गये। उन्हे प्राकृतिक संरक्षण के साथ ही भोजन भी प्राप्त नहीं हो पा रहा है और शिकार के कारण उनकी संख्या घट रही है। बुगुले, सारस, नीलकंठ, टिटहरी, कठफोडवा, सेह, सियार, नेवला, खरगोश, गिद्ध आदि बड़ी संख्या में समाप्त हुए हैं। नीलगायों का भी निरंतर शिकार होता रहा। मांस के शौकीनों के कारण जंगली तीतर लुप्त होते जा रहें हैं। मोर भी शिकारियों का निशाना बनें। गंगनहर में जलमुर्गी देखने को मिल जाती थी परंतु उनका भी शिकारी शिकार करने में लगे है। उल्लू और चकवा–चकवी वृक्षों के खोखर में अपना आश्रय–स्थल बनाते थे, उनके आश्रय–स्थल समाप्त हो गये। तथाकथित उल्लु तंत्र–विद्या के लिए तांत्रिकों के शिकार हो गये। नर गौरया (चिड्डा) का भी बडी संख्या में शिकार किया गया है।

संकटमय

भारत में साधारणतः तथा गिद्धों की दो जातियाँ पाई जाती है एक सफेद पीठ वाल गिद्ध दूसरा गोबर गिद्ध। डाइक्लोफिनैक नामक दर्द–निवारक दवा को प्रतिबंधित करने के पश्चात् गिद्धों की संख्या में आ रही कमी अब थोडी हुई है, किंतु अब सफेद गिद्ध दिखाई नहीं पडते। उनकी जाति लुप्तप्राय है।

मृत पशुओं के मांस को खाने और पर्यावरण की दृष्टि से सफाई करने में गिद्धों की महत्वपूर्ण भूमिका है। गिद्ध मृत पशुओं का मांस खाकर पर्यावरण को सडांधमुक्त रखते हैं। पन्ना की पहाडियों में गिद्धें की आबादी मिलती है, किंतु जानवरों को डिक्लोफेनौक औषधि देने के कारण उनके मांस को खाने के परिणामस्वरूप उनकी संख्या बहुत कम होती जा रही है। जिसके कारण गिद्धों की आबादी 97 प्रतिशत तक घट गई है।

एशियाई सिंहों के अस्तित्व को खतरा

गिर वन एवं आसपास के क्षेत्रों में एशियाई सिंहों की निरंतर होती मौत से इनके अस्तित्व को एक बडा खतरा उत्पन्न हो गया है। गुजरात का गौरव माने जाने वाले एशियाई सिंहों की मौत इसलिए भी हो रही है क्योंकि वन क्षेत्र में कई रेल लाइने गुजर रही है जिसके कारण ये प्रायः दुर्घटना का शिकार हो जाते हैं। वर्ष 2013–14 में इस प्रकार मरने वाले सिंहों की संख्या 53 थी। जून 2015 में गुजरात के इस क्षेत्र में बाढ के कारण ही मरने वाले सिंहों की संख्या 33 हुई है और इसके बढने की संभावना है।

हिमाचल में बब्बर शेर खत्म होने के कगार पर

हिमाचल प्रदेश में बब्बर शेर की जाति समाप्त होने के कगार पर है। प्रदेश के एकलौते सिरमौर रेणुकाजी वन्य जीव विहार में केवल दो बूढे बब्बर शेर रह गए हैः एक नर और दूसरी मादा।

बाघों का शिकार

विश्व बाघ दिवस (29 जुलाई, 2014) के अवसर पर पर्यावरण–संरक्षण संगठन "वर्ल्ड वाइल्ड फंड" ने कहा है कि विश्व में प्रत्येक सप्ताह औसतन दो बाघों का शिकार किया जा रहा है। विश्व भर में बाघों की घटती संख्या पर चिंता व्यक्त करते हुए अवैध शिकार को इसके लिए उत्तरदायी बताया है। संप्पूर्ण एशिया में हाथी दांत और गैंडे के सींग के बाद बाघ के अंगों की भारी मांग है। इस संगठन ने वन्यजीव व्यापार निगरानी नेटवर्क के आँकड़ों का हवाला देते हुए बताया कि जनवरी 2000 से अप्रेल 2014 के बीच कम से कम 1590 बाघों का शिकार किया गया। भारत और रूस में बाघों का नियमित रूप से सर्वेक्षण किया जाता है, पूरे विश्व में बाघों की संख्या बत्तीस सौ होने का अनुमान लगाया गया है।

इंसानों की बढ़ती आबादी जंगली जानवरों के लिए खतरा

मनुष्यों से बढ़ती जनसंख्या और आबादी जंगली जानवरों के लिए खतरा सिद्ध हो रही है। अनेक लोग प्रतिदिन लकडी काटने जंगलों में जाते हैं, पिकनिक के लिए भी लोग वहाँ घूमने जाते हैं पालतू जानवर भी रोज वनों में पहुंच रहें हैं, जिससे जंगली जानवरों की आबादी में शोर इतना बढ़ता जा रहा है कि जंगल के ये जानवर दशहत तथा घबराहट में इंसानों की आबादी तथा इलाके की ओर भाग रहें है और लोगों के जीवन के लिए खतरा बन रहें हैं।

एक बाघ को जंगल में कम से कम तीन वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र रहने के लिए चाहिए। लेकिन जंगलों पर बढ़ती आबादी के दबाव ने इनका क्षेत्र समेट दिया है। बाघ के बच्चों की मृत्यु–दर तेजी के साथ बढी है। वर्ष 2010 में हुए सर्वे क्षण में भारत में बाघों की संख्या 1706 थी किंतु चार–वर्ष बाद की गणना मे इनकी संख्या केवल 35 ही बढ पाई।

डॉल्फिन के अस्तित्व को खतरा

भागलपुर का गंगा क्षेत्र डॉल्फिन आरक्षित क्षेत्र के तौर पर जाना जाता है किंतु वहाँ डाल्फिन के अस्तित्व पर प्रश्न–चिह्न लग गया है।

डायनासोर का विलुप्तीकरण

वैज्ञानिकों के अनुमान के अनुसार ज्वालामुखी के लावा के कारण वातावरण में कार्बन डाइ–ऑक्साइड और सल्फर की मात्रा विषैले स्तर पर पहुंच गई जिसके परिणामस्वरूप वैश्विक ताप और समुद्री अम्लीकरण के कारण डायनासोर विलुप्त हो गए।

एक सींगी गैंडा अब विलुप्त प्राणी

असम के काजीरंगा और दलदलीय क्षेत्रों से जुड़ा एक सींग भारतीय गैंडा भी विलुप्त प्राणियों में शामिल है।

संकटग्रस्त जातियाँ

डायनासोर, लाल पांडा, क्यूबन लाल तोता, डोडा, एन्टार्क्टिक भेडिया आदि जीवों की जातियाँ पूर्ण रूप से विलुप्त हो चुकी है। एक सींगी हिरण, कठफोडवा पक्षी, गुरसल, चीता आदि भी विलुप्त होने की स्थिति में हैं। एशियाई चीता विलुप्त हो चुका है।

अंसुरक्षित जातियाँ

भारतीय गिद्ध, काला हिरण, बारहसिंगा, अफ्रीकन हाथी आदि जीवों की ऐसी प्रजातियाँ हैं जो पूर्ण रूप लुप्त नहीं हुई, किंतु लुप्त होने के कगार पर हैं। संकटग्रस्त स्वदेशी जातियों जैसे जंगली भैंसा एवं महान भारतीय सारंग (ग्रेट इंडियन वस्टार्ड) के संरक्षण को प्राथमिकता देने की आवश्यकता है।

दुलर्भ वन्य जीव ऊदबिलाव

दुलर्भ ऊदबिलाव मांसाहारी जीव है जो पानी में रहता है। भारत में ऊदबिलाव की तीन जातियाँ पायी जाती है।

दुलर्भ जाति उल्लू

उल्लू की जाति अब दुर्लभ हो गई। फसल को बचाने की दृष्टि से इसका बडा महत्व है। यह कीड़े, चूहे, छछूंदर आदि खा लेता है। अंगोरा खरगोश, ध्रुवी रीछ, गिरगिट, प्राइमेट वर्ग का बंदर, उल्लू, इन्डोनेशिया के एक द्वीप पर पाई जाने वाली कोमोडो नामक छिपकली, स्पॉटेड कैट, ब्राजील के दक्षिणी पूर्वी अमेजन क्षेत्र में सुअर वत पेकारी, जेबरा, गिर अभयवन में दुर्लभ एशिया के शेर आदि दुर्लभ जातियाँ हैं।

दुलर्भ पक्षी

सोन चिरैया या सोन पक्षी दुर्लभ हो गया है जिसका कारण आधुनिक पक्के घरों में बगीचे का न होना तथा घोंसला बनाने के स्थान की कमी आदि है।

नम भूमियों की बर्बादी के कारण वन्य जीवों पर संकट

नम भूमि अनेक जीवों का ठिकाना है। दलदली क्षेत्र में हिरण जातियाँ भी कम हो रही है। कीटनाशियों के छिड़के जाने के कारण नमभूमि में केंचुए भी समाप्त हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त तराई क्षेत्रों में पाई जाने वाली मच्छीमार बिल्ली भी कम हो रही है। गुजरात के कच्छ क्षेत्र का जंगली गधा भी खतरे में है। इसी प्रकार नम भूमियों से जुडे जीव जैसे डूंरोंग, एशियाई जलीय भैंस आदि संकट में हैं।

वन्य जीवों का शिकार

अन्तरराष्ट्रीय गिरोहों द्वारा वन्य जीवों और अंगों की तस्करी की जाती है वन्य जीवों के अंगों की मांग के कारण उनका शिकार बढ़ रहा है। हाथी दांत के लिए हाथियों का शिकार किया जाता है। खाल और हडड्यिों के लिए बाघ को मारा जाता है। गैंडे के सींग की भी बहुत मांग है। वियतनाम में यह अंधविश्वास है कि गैंडे का सींग कैंसर रोग को ठीक कर सकता है। अतः विश्वभर में गैंडों का शिकार तेजी से बढ़ा। जीवित पक्षी, जिंदा सरीसृप, मगरमच्छ, साँप एवं छिपकली की खालों की तस्करी अंतरराष्ट्रीय बाजार में की जाती रही है। वैश्विक स्तर पर वन्य जीवों के गैरकानूनी व्यापार के कारण वन्य जीव असुरक्षित हो गए हैं और वन्य जीवों की दुर्लभ जातियाँ असुरक्षित होने के कारण विलुप्तप्राय की सूची में गिनी जाने लगी हैं।

वन्यजीव संरक्षण में कठिनाइयाँ

तीव्र शहरीकरण, वन्य जीवों का अवैध शिकार, कृषि–भूमि के विस्तार आबादी बढ़ने के कारण जंगली भूमिका अतिक्रमण, बडे बांधों का निर्माण, उद्योंगो के लिए वनों का कटाव एवं खनिज–खनन के कार्यो के कारण वन्य–जीवों के संरक्षण पर हानिकारक प्रभाव पडा है। इन कारणों के परिणामस्वरूप जैव–विविधता घट रही है। वन्य जीवों के विलुप्त होने के साथ–साथ पक्षियों के विलुप्त होने का कारण, जल स्रोतों का समाप्त होना भी हैं। अतः वन्य जीवों को बचाने के लिए यह आवश्यक है कि प्राकृतिक जल–स्रोत जैसे झीलों को बचाया जाए। जो आज अतिक्रमण और प्रदूषण की भेंट चढ गई हैं।

समस्या के समाधान हेतु वन्यजीव संरक्षण कानून

जनता को वन्य जीवों संरक्षण कानून के प्रति जागरूक करने की आवश्यकता है, साथ ही वन्य जीवों के अवैध कारोबार को रोकने के लिए बनाए गए कानूनों का ठीक प्रकार से क्रियान्वित किया जाना आवश्यक है। उल्लेखनीय है कि भारत में वन्यजीव अवैध कारोबार को नियंत्रित एवं प्रतिबंधित करने के लिए सख्त कानून और नीतिगत फ्रेमवर्क है।

वन्यजीव संरक्षण हेतू सरकारी प्रयास

वन्यजीव संरक्षण के लिए सरकार ने 1952 में "इंडियन बोर्ड ऑफ वाइल्ड लाइफ" का गठन किया गया और देश में कई स्थानों पर वन्य जीव अभयारण्य और राष्ट्रीय उद्यानों की स्थापना की गई। देश में वन्यजीवों के संरक्षण के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने हेतु 'इंडियन बोर्ड ऑफ वाइल्ड लाइफ' ने प्रतिवर्ष 2–8 अक्टूबर के मध्य वन्यजीव सप्ताह मनाने का निश्चय किया। वन्यजीव संरक्षण के विभिन्न कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने हेतु इंडियन बोर्ड ऑफ वाइल्ड लाइफ शीर्षस्थ संस्था है, जिसके मुखिया देश के प्रधानमंत्री होते है।

इसके अतिरिक्त देहरादून स्थित 'वाइल्ड लाइफ इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया' नामक संस्थान (1982) वन्यजीवों से संबंधित प्रशिक्षण कार्यक्रमों, वन्यजीव शोध एवं प्रबंधन, अकादमिक पाठ्यक्रमों का संचालन करता है।

एनीमल वेल्फेयर बोर्ड ऑफ इंडिया

प्रिवेंशन ऑफ क्रूएलिटी टू एनीमल्स अधिनियम, 1960 की धारा 4 के तहत गठित इस संस्था का कार्य जानवरों के कल्याण के बारे में सरकार को परामर्श देना है। इसका सांविधिक संस्था का मुख्यालय चेन्नई में है।

○○○

10

जैविक खेती की ओर बढ़ता रुझान

डॉ० वीरेन्द्र कुमार

आजकल खाद्य पदार्थों में विषैले कृषि रसायनों की उपस्थिति चिन्ता का विषय है। कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए खेती में जहरीले कृषि रसायनों का प्रयोग दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। जिसके परिणामस्वरूप खाद पदार्थों जैसे अनाज, दालों, तिलहनों, मसालों, चारा, सब्जियों, फलों, दूध और दुग्ध पदार्थों में कृषि रसायन अवशेषों की मात्रा बढ़ती जा रही तो दूसरी तरफ मृदा, जल और वातावरण भी इन विषाक्त रसायनों के अन्धाधुन्ध प्रयोग से प्रदूषित होते जा रहे हैं। जिसका अन्ततः मानव स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। विश्व व्यापार संगठन (डब्लयू.टी.ओ.) और दूसरी एजेन्सियां भी सुरक्षित और स्वास्थ्यवर्धक खाद्य पदार्थों की कमी को लेकर चिंतित हैं। आज जहाँ विषाक्त खाद्य पदार्थों के कारण विभिन्न प्रकार की बीमारियों लोगों में पनप रही हैं वहीं कृषि रसायनों के गलत और अत्यधिक प्रयोग से कृषि भूमि का उपजाऊपन और मृदा स्वास्थ्य भी विगड़ता जा रहा है। आये दिन खाद्य पदार्थों में कीटनाशियों, व्याधिनाशियों, रासायनिक अर्वरकों और पादप नियामकों के अवशेष मौजूद होने की रिपोर्ट सामने आती रहती है। जैसे–जैसे खेती की सघनता बढ़ी है वैसे–वैसे अनेक विनाशकारी बीमारियों व कीटों का प्रकोप बढ़ा है। कृषि रसायनों के प्रयोग के लिए उचित परामर्श प्राप्त न होना भी किसानों के लिए चिंता का विषय बना हुआ है। खेती में कृषि रसायनों के अंन्धाधुन्ध प्रयोग से 'किसान का मित्र' समझे जाने वाले केचुओं और अन्य लाभकारी जीवाणुओं की संख्या में भी कमी आई है। मिट्टी में उपस्थित अनेक सूक्ष्मजीव वास्तव में प्रकृति की ओर से दिया गया निशुल्क खजाना है। ये सूक्ष्मजीव मृदा में होने वाले विभिन्न अपघटन तथा विघटन इत्यादि क्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं जिससे पोषक तत्व तथा खनिज लवण पौधों को उपलब्ध रहते हैं। ये सूक्ष्म जीव मिट्टी को चूर्णित बनाकर उसमें हवा धूप के आवागमन को आसान बनाते हैं तथा मृदा की जल संरक्षण क्षमता बढ़ाते हैं। वर्तमान परिवेश को देखते हुए खाद्य एवं खाद्य पदार्थों को विषाक्त कृषि रसायनों के कुप्रभाव से बचाना नितान्त अवश्यक है। इस सम्बंध में जैविक खेती की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। फसलों से अच्छी गुणवत्ता की अधिक पैदावार लेने हेतु तथा जमीन के उपजाऊपन को बनाये रखने के लिए जैविक खेती का महत्वपूर्ण योगदान है। स्वस्थ जीवन के लिए हम सबको स्वच्छ वायु, जल, भोजन, चारा, ईंधन, आवास और प्रदूषण मुक्त पर्यावरण की आवश्यकता है। ये आवश्यकताएं कहीं न कहीं जैविक खेती से जुड़ी हुई है। साथ ही आधुनिक खेती में बढ़ती उत्पादन लागत भी किसानों को जैविक खेती की ओर प्रेरित कर रही है। जिसका मुख्य उद्देश्य कम से कम लागत से अधिक से अधिक उत्पादन लेना तथा जमीन का उपजाऊपन कायम रखकर विषमुक्त खाद्य पदार्थों का उत्पादन करना है। जैविक खेती से तात्पर्य फसल उत्पादन की उस पद्धति से है जिससे रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशियों, व्याधिनाशियों, शाकनाशियों, पादप वृद्धि नियामकों और पशुओं के भोजन में किसी भी रसायन का प्रयोग नहीं किया जाता बल्कि उचित फसल चक्र, फसल अवशेष, पशुओं का गोबर व मलमूत्र, फसल चक्र में दलहनी फसलों का समावेश, हरी खाद और अन्य जैविक तरीकों द्वारा भूमि की उपजाऊ शक्ति बनाये रखकर पौधों को पोषक तत्वों की प्राप्ति कराना एवं जैविक़ विधियों द्वारा कीट पतंगों और खरपतवारों को नियन्त्रण किरना है। इस प्रकार जैविक खेती में जैविक उर्वरकों, जैविक खादों, हरी खादों एवं फसल अवशेषों का विशेष महत्व है। जैविक उत्पाद के लिए फसल ऐसे खेत में उगाई जाती है जिसमें कम से कम पिछले तीन वर्षों में किसी भी प्रकार के रसायनों या दवा का प्रयोग नहीं किया गया हो। इस तरह मिट्टी के अकार्बनिक रासायनिक तत्व पूरी तरह से समाप्त हो जाते हैं।

जैविक खेती क्यों आवश्यक है?

1. जैविक खेती में प्राकृतिक संसाधनों का उचित प्रबंध होता है। भविष्य में इन साधनों की उपलब्धता अत्यन्त सीमित होगी।

2. जैविक खादों, जैविक उर्वरकों, फसल अवशेषों, कम्पोस्ट एवं वर्मी कम्पोस्ट के प्रयोग द्वारा मृदा की दीर्घकालीन उर्वरकता में वृद्धी एवं स्थापना।

3. भुखमरी, भूख जनित बीमारियों और कुपोषण आदि से मानव जाति को बचाने के लिए उच्च पोषक गुणवत्ता वाले खाद्य पदार्थों को पर्याप्त मात्रा में उपल्बध कराना जिससे मानव स्वास्थ्य ठीक बना रहे।

4. बढ़ते आधुनिकीकरण एवं नयी–नयी कृषि प्रौद्योगिकियों द्वारा उत्पन्न मृदा, जल एवं वायु प्रदूषण को कम करना एवं ग्रामीण विकास एवं रोजगार को बढ़ावा देना।

5. जैविक खेती पद्धति का केंद्र बिंदु मृदा को स्वस्थ व जीवित रखते हुए मृदा में उपस्थित लाभकारी जीवाणुओं की जैविक क्रियाओं को बढ़ावा एवं प्रोत्साहन देना।

6. आधुनिक खेती में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशियों के अन्धाधुन्ध प्रयोग से मृदा उर्वरता एवं मनुष्य के स्वास्थ्य पर बुरा, प्रभाव पड़ रहा है।

जैविक खेती का मुख्य उद्देश्य मृदा, पौधों, पशुओं एवं मनुष्यों के स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर फसलों की उत्पादकता बढ़ाना है।

7. आधुनिक खेती में रासायनिक उर्वरकों की बढ़ती कीमतों और उनके कम उत्पादन से किसान अत्यधिक परेशान हो रहे हैं।

8. मिट्टी की उपजाऊ शक्ति बनी रहे तथा मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की पर्याप्त मात्रा रहे जिससे सूक्ष्म जीवाणु निरन्तर क्रियाशील बने रहे।

9. राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय बाजारों में उपभोक्तओं की जैविक उत्पादों (आर्गेनिक प्रोडक्ट) के प्रति मांग में दिनों–दिन वृद्धि हो रही है।

10. जैविक खेती को अपनाने से प्रति वर्ष खेती में प्रयोग होने वाले हजारों टन रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशियों के प्रयोग में कमी आयेगी।

11. जहरीले कीटनाशियों का खेती में प्रयोग कम होने से पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण संतुलन बना रहेगा।

12. औद्योगिक उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार होने के कारण इनका आसानी से निर्यात किया जा सकेगा जिससे हमें विदेशी मुद्रा अर्जित करने में मदद मिलेगी।

जैविक खेती के प्रमुख अवयव

जैविक खाद : देश में प्रयोग की जाने वाली जैविक खादों में गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, मुर्गी खाद, पशुओं के नीचे का बिछावन, सुअर एवं भेड़–बकरियों की खाद तथा गोबर गैस खाद प्रमुख हैं। साधारतयतः गोबर एवं कम्पोस्ट की एक टन खाद से औसतन 5 किलोग्राम नाइट्रोजन, 2–5 किलोग्राम फास्फोरस एवं 5 पोटैश मिल जाती है। परंतु दुर्भाग्यवश हम इनका 50 प्रतिशत ही प्रयोग कर पाते हैं। अधिकतर गोबर का प्रयोग किसान भाई उपलों के रूप में जलाने के लिए करते हैं। कुछ बायोडायनामिक खादें जैसे गोमूत्र, गाय के सींग की खाद, हड्डी की खाद का प्रयोग भी जैविक खेती में किया जा रहा है। इसके अलावा चीनी मिल की खाद, सीवर की खाद व कार्पेट अवशिष्ट का भी प्रयोग किया जा सकता है। फसल अवशेष खरपतवारों शाक सब्जियों की पत्तियों एवं पशुओं के गोबर को मिलाकर केचुंओं की सहायता से बनाये हुए खाद को वर्मी कम्पोस्ट या केंचुआ खाद कहते हैं। इस विधि द्वारा कार्बनिक अवशेषों को एक लम्बे ढेर में रखकर केंचुए (*आइसीनिया फिटिडा*) छोड दिये जाते हैं। करीब 45 दिन में वर्मी कम्पोस्ट बनकर तैयार हो जाती है। जैविक खादें मृदा की गुणवत्ता में सुधार करने के साथ–साथ मुख्य, द्वितीय और सूक्ष्म पोषाक तत्वों की उपलब्धता को भी बढ़ाते हैं। किसी फसल में जैविक खादों की दी गई मात्रा का केवल 30 प्रतिशत ही प्रथम वर्ष में उपयोग होता है, शेष मात्रा अगली फसल द्वारा उपयोग की जाती है। जैविक खादों में ह्यूमिड पदार्थ होने के कारण मृदा में फास्फोरस की उपलब्धता भी बढ़ जाती है।

जैव उर्वरक :– फसलों का अच्छा उत्पादन लेने में जैव उर्वरकों का प्रयोग लाभदायक सिद्ध हो रहा है। इनमें राइजोबियम कल्चर, एजोटोनैक्टर, एजोस्पाइरिलम, पी.एस.बी., अजोजा, वैसीकुलर माइकोराइजा, नील हरित शैवाल, बायो एक्टीबेटर आदि प्रमुख हैं। संधारणीय खेती एवं मृदा स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए उर्वरकों का प्रयोग आज आवश्यक है। जैव उर्वरक कम खर्च पर आसानी से उपलब्ध हैं तथा इनका प्रयोग भी बहुत सुगम हैं। जैव उर्वरकों के प्रयोग से विभिन्न फसलों की उपज में 10 से 25 प्रतिशत तक वृद्धि होती है। इनको जैव खेती प्रबंधन का मुख्य अवयव माना जाता है। राइजोबियम व एजोटोबैक्टर वायुमण्डल में उपस्थित नाइट्रोजन (78 प्रतिशत) को यौगिकीकरण द्वारा भूमि में जमा करके पौधों को उपलब्ध कराते हैं। पी.एस.बी. मृदा में अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित कर पौधों के लिए फाफस्फोरसकी उपलब्धता बढ़ाते हैं। जिससे अगली फसलों को भी लाभ पहुँचता है। इसके अलावा जीवाणु उर्वरक पौधों की जड़ों के आस–पास (राइजोस्फीयर) वृद्धिकारक हारमोन उत्पन्न करते हैं जिससे पौधों की वृद्धि व विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। जैव उर्वरकों का चयन फसलों की किस्म के अनुसार ही करना चाहिए। रासायनिक उर्वरकों, शाकनाशियों व कीटनाशियों के साथ जैव उर्वरकों का कभी भी प्रयोग नहीं करना चाहिए। जैव प्रयोग करते समय पैकेट के ऊपर उत्पादन तिथि, उपयोग की अन्तिम तिथि व संस्तुत फसल का नाम अवश्य देख लें। प्रयोग करते समय जैव उर्वरकों को धूप व गर्म हवा से बचाकर रखना चाहिए। विभिन्न प्रकार के जैव उर्वरकों के तैयार पैकेट सभी राज्यों में स्थापित कृषि विश्वविद्यालयों के सूक्ष्म जीवविज्ञान विभागों, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान स्थित सूक्ष्मजीव विज्ञान संभाग व कृषि विज्ञान केंद्रों से भी मुफ्त प्राप्त किये जा सकते हैं। इसके अलावा अन्यत्र भी उपलब्ध हैं।

सारणीः विभिन्न फसलों के लिए उपयुक्त जैव उर्वरकों की प्रयोग विधिः

क्र. सं.	फसलें	संस्तुत जैव उर्वरक	जैव उर्वरकों की मात्रा/है.	प्रयोग विधि	टिप्पणी
1.	सभी दलहनी फसलें (चना, अरहर, मूंग, उड़द, मटर, मसूर)	राइजोबियम पी.एस.बी.	400–600 ग्राम 1–2 kg	बीजोपचार	फसल के अनुसार राइजोबियम की संस्तुत प्रजाति का चुनाव करें
2.	अनाज वाली फसलें (गेहूं, मक्का, ज्वार, बाजरा, जौ, धान)	एजोटोबैक्टर पी.एस.बी. एजोस्पिरिलम एजोस्पिरिलम अजोला नील हरित शेवाल	1–2 kg 1–2 kg 1–1.5 kg 1–1.5 kg 1 टन 10–15 kg	बीजोपचार एवं मृदा उपचार बीजोपचार एवं मृदा उपचार पौध जड़ उपचार – –	बुवाई के समय प्रयोग गन्ने के लिए विशेष उपचार रोपाई के समय
3.	तिलहनी फसलें (सरसों, सूरजमुखी, तिल, सोयाबीन)	एजोटोबैक्टर पी.एस.बी.	500–800 ग्राम 1–2 kg	बीज उपचार व मृदा उपचार बीज उपचार व मृदा उपचार	बुवाई के समय जैव उर्वरकों को धूप से बचा कर रखें

4.	नकदी फसलें (कपास, गन्ना, तम्बाकू, आलू)	एजोटोबैक्टर पी.एस.बी. एजोस्पिरिलम	800–1000ग्राम 1–2 kg 1–1.5 kg	बीज उपचार बीज उपचार व मृदा उपचार बीज उपचार व मृदा उपचार	जैविक उर्वरकों की संस्तुत मात्रा को 30–40 लीटर घोल में कन्द, कलम उपचार करें
5.	चारा फसलें (बरसीम, रिजका(लूसर्न) ग्वार, मेथी) ज्वार बाजरा, मक्का	राइजोबियम पी.एस.बी. एजोटोबैक्टर एजोस्पिरिलम	800–1000ग्राम 1–2 kg 1–2 kg 1–1.5 kg	बीज उपचार बीज उपचार व मृदा उपचार बीज उपचार व मृदा उपचार	फसल के लिए संस्तुत उपयुक्त प्रजाति बुवाई के समय

हरी खाद :– हरी खाद का प्रयोग करने से मृदा में कार्बन, नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटैश जैसे मुख्य तत्वों के अलावा सभी द्वितीयक एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा व उपलब्धता बढ़ायी जा सकती है। हरी खाद के लिए मुख्यतः दलहनी फसलों का प्रयोग किया जाता है। इनमें सनई, ढैंचा, लोबिया, मूंग, ग्वार व सोयाबीन प्रमुख हैं। इन फसलों से हरी खाद बनाने में मात्र दो माह का समय लगता है। ये सभी फसलें अल्प अवधि वाली व तेजी से बढ़ने वाली हैं। इन फसलों को फूल आने से पूर्व मिट्टी वाले हल की मदद से या हैरो से मिट्टी में दबा दिया जाता है। हरी खाद की फसल को, लगभग 10 दिन का समय सड़ने में लगता है। इसके बाद खेत को तैयार करके अगली फसल की बुवाई व रोपाई कर दी जाती है। हरी खादों के प्रयोग से खेत में 20–30 किलोग्राम नाइट्रोजन आसानी से सुरक्षित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त फास्फोरस, पोटैश व सूक्ष्म पोषक तत्वों का भंडार भी बढ़ाया जा सकता है। बहुउद्देशीय पेड़–पौधों जैसे सुबबूल, नीम व ग्लीरीसीडिया की पत्तियां एवं टहनियों का प्रयोग भी हरी खाद के रूप में किया जा सकता है। किसान भाइयों को दो–तीन साल में एक बार हरी खाद की फसलों को अवश्य उगाना चाहिए। इससे भूमि की उर्वरा शक्ति तो बढ़ती ही है साथ ही मृदा स्वास्थ्य में भी सुधार होता है। परिणामस्वरूप अगली फसलों का उत्पादन भी अच्छा होता है। इस प्रकार भूमि की जलधारण क्षमता तथा फलों के लिए जल की उपलब्धता को भी बढ़ाया जा सकता है।

फसल अवशेष प्रबन्धन :– साधारणतया किसान भाई फसल उत्पादन में फसल अवशेषों के योगदान को नजर अन्दाज कर देते हैं। उत्तर पश्चिम भारत में धान–गेहूँ फसल चक्र के अन्तर्गत

फसल अवशेषों का प्रयोग आम बात है। कृषि में मशीनीकरण और बढ़ती उत्पादकता की वजह से फसल अवशेषों की अत्यधिक मात्रा उत्पादित होती है। फसल कटाई उपरान्त दाने निकालने के बाद प्रायः किसान भाई फसल अवशेषों को जला देते हैं। फसल अवशेषों का प्रयोग, जैविक खेती में करके मृदा में कार्बनिक कार्बन की मात्रा में सुधार किया जा सकता है। इसी प्रकार सब्जियों को तोड़ने के बाद इनके तने, पत्तियां और जड़े खेत में रह जाती हैं। जिनको जुताई करके पुआल, भूसा व फार्म अवशिष्ट प्रमुख हैं। नीम की निंबोली एवं नीम की खली से पोषक तत्व तो मिलते ही हैं साथ ही ये विभिन्न प्रकार के हानिकारक कीटों को भी नष्ट करती हे। यद्यपि फसल अवशेष का पोषक तत्व प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान है, परन्तु अधिकांशतः फसल अवशेषों को खेत में जला दिया जाता है या खेत से बाहर फेंक दिया जाता है। फसल अवशेष पौधों को पोषक तत्व प्रदान करने के साथ–साथ मृदा की भौतिक, रासायनिक और जैविक क्रियाओं पर भी अनुकूल प्रभाव डालते हैं। फसल अवशेष क्षारीय मृदाओं के pH को कम करके उन्हें खेती योग्य बनाने में भी मदद करते हैं।

खरपतवार नियंत्रण :– जहाँ तक हो सके जैविक खेती में खरपतवारों का नियंत्रण निकाई–गुडाई द्वारा ही करना चाहिए। इसके अलावा गर्मियों में गहरी जुताई, सूर्य की किरणें द्वारा सोलेराइजेशेन, उचित फसल प्रबन्धन व प्रति इकाई क्षेत्र पौधों की पर्याप्त संख्या अपनाकर खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है। साथ ही खरपतवारों को खाने वाले परजीवी व अन्य जीवाणुओं का प्रयोग किया जा सकता है। कांग्रेस घास (पारथेनियम) फसलों में उगने के अलावा मनुष्य व पालतू जानवरों में खुजली व अन्य बीमारियां फैलाता है। कांग्रेस घास नामक हानिकारक खरपतवार को जाइगोग्रामा परजीवी खाकर समाप्त कर देते है। भारत सरकार तथा पूसा संस्थान की ओर से इस बीटिल को जगह–जगह छोड़ा जा रहा है ताकि इस समस्याग्रस्त घास का प्राकृतिक तौर पर बढ़ने से अंकुश लगाया जा सके। सोलेराईजेशन की क्रिया में फसल काटने के बाद मिट्टी को हल चलाकर छोड़ देते हैं। सूर्य की गर्मी से मिट्टी का तापमान बढ़ता है। इस क्रिया को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए सफेद पारदर्शी चादर से भूमि को ढ़क देते है। इसके फलस्वरूप मृदा तापमान में वृद्धि होती है और खरपतवारों के बीज व वानस्पतिक भाग अंकुरण के लिए निष्क्रिय हो जाते हैं। इसके अलावा जैविक खेती में मुख्य फसल बोने से पहले खरपतवारो को उगने का अवसर देकर भी समाप्त किया जा सकता है। इस विधि में पहले खेत की सिंचाई कर देते हैं। जिससे नमी पाकर अधिकांश खरपतवार उग आते हैं फिर खेत में हल चलाकर इन खरपतवारों को नष्ट कर दिया जाता है। फसलों जैसे सब्जियों, फलों व कपास में ड्रिप सिंचाई तकनीक अपनाकर भी खरपतवारों के प्रकोप को कम किया जा सकता है। इस विधि में मुख्य फसल की जड़ों के आसपास पानी बूंद–बूंद करके आवश्यकता पड़ने पर ही दिया जाता है। कभी–कभी मुख्य फसल के साथ कम अवधि वाली फसलों को

अन्तः फसल के रूप में उगाकर भी खरपतवारों की संख्या को कम किया जा सकता है।

कीट एवं रोग नियन्त्रण :– जैविक खेती के अन्तर्गत कीट व रोगों का नियंत्रण भी जैविक साधनों द्वारा ही किया जाना चाहिए। अलग–अलग सब्जियों, फलों व फूलों वाली फसलों में विभिन्न प्रकार के कीट पतंगे पाये जाते हैं। ये कीट पतंगे पत्तियों, कलियां, तना एवं फलों कर रस चूसते हैं या उनको कुतर कर खा जाते हैं। ये कीट पत्तियों, कलियों, तना, एवं फलों का रस चूसते हैं या उनको कुतर कर खा जाते हैं। इससे फसलों की गुणवत्ता खराब हो जाती है। फसल पर नीम, लहसुन, हल्दी, मैंथी आदि के प्रयोग से कई प्रकार के कीड़े या तो नष्ट हो जाते हैं या दूर भाग जाते हैं। इसके लिए नीम की निबोंली के पाउडर का एक ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव किया जा सकता है। इसी प्रकार नीम के तेल 1–5 प्रतिशत एवं करंज के तेल के छिड़काव से फसलों को कीटों से बचाया जा सकता है। आजकल नीमगोल्ड, नीम का तेल, निमोलीन आदि वृक्ष से तैयार जैविक कीटनाशी बाजार में आसानी से उपलब्ध हैं। सब्जियों में कीड़ों की रोकथाम के लिए ट्राईकोग्रामा उत्तम पाया गया है। ट्राइकोग्रामा एक सूक्ष्म अंड़ परजीवी है जो तना छेदक, फली छेदक व पत्ती खाने वाले कीटों के अंड़ों पर आक्रमण करते हैं। ट्राईकोकार्डमा पोस्टकार्ड की तरह ही एक कार्ड होता है जिस पर लगभग 20 हजार परजीवी ट्राईकोग्रामा पलते हैं। यह कार्ड कपास, गन्ना, धान जैसी फसलों में लगने वाले बेधक कीड़ों के नियंत्रण हेतु खेतों में लगाया जाता है। एक एकड़ क्षेत्र फसलों के लिए 2 से 3 कार्ड प्रति सप्ताह की दर से 5–6 बार लगाने से कीटों की रोकथाम में मदद मिलती है। इसी प्रकार ट्रोकोडर्मा एवं न्यूमैरिया भूमि जनित फफूंद वाली बीमारीयों जैसे विल्ट, कोलर रोट व नर्सरी में पौधों का सड़ना आदि की रोकथाम हेतु अच्छे सिद्ध हुए हैं। बीजोपचार के लिए 6 से 8 ग्राम चूर्ण प्रति किलोग्राम बीज व भूमि उपचार के लिए 2 से 3 किलोग्राम चूर्ण प्रति हैक्टेयर की दर से गोबर व वर्मी कम्पोस्ट में मिलाकर डालने से विभिन्न भूमि जनित फफूंद रोगों की रोकथाम की जा सकती है। इस प्रकार कृषि रसायनों के प्रतिकूल प्रभावों से भूमि को बचाया जा सकता है। इसके अलावा उचित फसल चक्र, ट्रैपक्रॉप एवं फसलों की प्रतिरोधक प्रजातियों को अपनाकर भी कीटों व रोगों की रोकथाम की जा सकती है। उपयुक्त बायोपेस्टीसाइड जे.डी. बायोन्टेक लि० 509 अम्बाद्विप, कस्तुरबा गाँधी मार्ग, नई दिल्ली – 110001 व नेफेड, 50–ए सेक्टर 'एफ' सनवर रोड, इंदौर, म० प्र० से प्राप्त किये जा सकते हैं।

निष्कर्ष : – ऑरगेनिक फूड का प्रचलन दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। आज देश के कई प्रदेशों में फलों व सब्जियों की जैविक खेती का भविष्य उज्ज्वल नजर आता है। उत्तरांचल प्रदेश जैविक खेती के क्षेत्र में अग्रणी है। इन क्षेत्रों के अन्तर्गत किसान अपनी पैदावार की गुणवत्ता को प्रमाणित करने के लिए ऐसी मान्यता प्राप्त संस्थाओं से अनभिज्ञ है जिनके माध्यम से पैदावार को उपभोक्ता तक पहुँचा सके या उसका निर्यात कर सके। इस संबंध में अधिक जानकारी के लिए किसान भाई राष्ट्रीय स्तर पर एपीड़ा, नई दिल्ली, एन.सी.यू. आई. बिल्डिंग, 3 सिरी इन्स्टीट्यूशनल एरिया, एशियाड़ गाँव, हौज खास, नई दिल्ली – 110016, फोन नं. 011–26513219, 26513204 व राष्ट्रीय जैविक खेती केन्द्र एवं प्रसंस्करण विभाग, उद्यान भवन लखनऊ, फोन नं. 0755–257012, 2576960 तथा विकास विभाग, दिल्ली, 11वी मंजिल बहुमंजिला कार्यालय, इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली, फोन नं. 011–23713399, 23319290 से जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इसके अलावा जैविक खेती के अंगीकरण, जैविक प्रमाणीकरण कार्यों हेतु अनुदान तथा जैविक खेती से जुड़ी विभिन्न योजनाओं की जानकारी के लिए उपर्युक्त केन्द्रों पर सम्पर्क किया जा सकता है।

○○○

विज्ञान समाचार

(1) क्या डायनोसोर की विलुप्ती शैवालों के कारण हुई?

प्रेमचंद्र श्रीवास्तव

कहते हैं कभी इस धरती पर विशाल डायनासोरों का साम्राज्य था। किंतु वर्तमान में डायनोसोरों के अंडे ही कभी–कभार जीवाश्म के रूप में प्राप्त हो जाते हैं। यह बात अपने आप में बड़ी अजीबोगरीब लगती है कि कभी अनगिनत संख्या में इस धरती पर विचरण करने वाले इन विशालकाय जीवों के अब मात्र जीवाश्म ही मिलते हैं।

डायनोसोरों के विलुप्ती के अनेक कारण बताए जाते है। किंतु इन दिनों एक सर्वथा नया कारण प्रकाश में आया है। नए अध्ययन के अनुसार धरती पर ऐसी अवसर आए हैं जब शैवालों के कारण डायनोसोरों का धरती से सफाया हो गया।

पिछले 540 मिलियन वर्षों के दौरान पाँच बार इस धरती की 50 प्रतिशत से 90 प्रतिशत प्राणि जातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं। किंतु यहाँ एक सहज–सा प्रश्न उठता है कि क्या विकास क्रम के शुरूआती दौर की आदिम शैवाल (एल्गी) विशालकाय डायनोसोरों की मृत्यु का कारण हो सकती है?

इस प्रश्न का अंतिम उत्तर तो पता नहीं क्योंकि कुछ वैज्ञानिक इस विचार से सहमत नहीं हैं कि डायनोसोरों की मृत्यु शैवालों द्वारा हुई है। यह विचार कुछ शंका तो पैदा करती ही है, क्योंकि शैवाल जैसा कोमल पादप अकेले डायनोसोरों की मृत्यु का कारण है, वह भी एक बार नहीं पाँच बार, यह कुछ अटपटा सा लगता है।

शैवाल बहुत ही सरल शारीरिक रचना वाले कोमल पादप हैं। इनमें अन्य पेड़–पौधों के समान न तो जड़ें होती हैं और न ही पत्तियाँ। हाँ ! एक बात सच है कि कुछ शैवाल जातियाँ अपने शरीर से अविषी पदार्थ स्रावित करती हैं जो मानव सहित अनेक जल–जीवों के प्रति अविषी होती हैं। यहाँ आविषी शैवालों के एक उदाहरण से आसानी से समझा जा सकता है। शैवालों का एक समूह डाइनोफ्लैजेलेट् (Dinoflagellates) एक तंत्रिका आविष (न्यूरोटॉक्सिन) मुक्त करती हैं जो कुछ अन्य जीवों के तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करती है और जब शैवाल अन्य आदिम सूक्ष्मजीवों के चारों ओर पोषक पदार्थ एकत्र हो जाते हैं तब शैवाल और अन्य आदिम सूक्ष्मजीव तीव्र गति से पलते–बढ़ते हैं और एकत्र होकर सघन बहुसंख्यकीय समूह बना लेते है। इसे "शैवाल प्रस्फुटन" (एल्गी ब्लूम) कहते हैं। और यदि "शैवाल प्रस्फुटन" विषैली हुई तो वह जल के पूरे पारितंत्र को हानि पहुचाती है। इससे मछलियों, जल–पक्षी, पानी वाले स्तनपायियों और मनुष्यों को भी जान गंवानी पड़ती है। अत्यधिक आविष स्रावित करने वाले शैवालों के समूह नील हरित शैवाल हैं। इन शैवालों को *सायनोबैक्टीरिया* भी कहते हैं।

पौधों के नए वर्गीकरण में नील हरित शैवालों को एल्गी समूह से हटा कर इसे जीवाणु (बैक्टीरिया) के साथ रखा गया है। किंतु कुछ वैज्ञानिक इसे अभी भी शैवाल मानते हैं क्योंकि यह अपनी ऊर्जा का निर्माण सूर्य के प्रकाश की सहायता से स्वयं करता है।

क्लीमसन विश्वविद्यालय के शोधकर्ता जेम्स कैसल और जॉन रोजर्स यह पता लगाना चाहते थे कि आविषी शैवाल प्रस्फुटन जो वर्तमान में अविषी हैं, क्या उन्होनें लाखों वर्ष पूर्व जीव जातियों के विलुप्तीकरण में सकारात्मक भूमिका निभायी थी?

प्रारंभ में उपरोक्त शोधार्थियों ने संबंधित लिखित साहित्य ढूँढा, रिपोर्टो को देखा जिनमें पाँच में से चार विलुप्तीकरण के संबंध में उल्लेख था– अश्मीभूत स्ट्रोमैटोलाइटीज (fossilized stromatlities) या गुंबद के आकार के पत्थर जिनकी पर्तो में सायनोबैक्टीरिया की दबी पर्ते मिली जिन्हें 'सूक्ष्मजीवीय भेट (माइक्रोबियल) कहते है। यह इस ओर इंगित करता है कि डायनोसोरों के विलुप्त होने का कारण *सायनोबैक्टीरिया* हैं।

इसके बाद शोधदल ने वर्तमान *सायनोबैक्टीरिया* की पुराने समय के *सायनोबैक्टीरिया* से तुलना की। निष्कर्ष यह मिला कि विगत मिलियन वर्षों के दौरान *सायनोबैक्टीरिया* में अधिक, परिर्वतन नहीं हुआ है और चूँकि उनकी शारीरिक संरचना में परिवर्तन बहुत ही कम हुआ है और वे आज भी आविष बना रहे हैं इसिलिए भूतकाल में भी वे अवश्य आविषी रहे होंगे। शोधदल को अश्मीभूत शैवाल में वृद्धि नहीं मिली। इसका कारण उन्होंने यह बताया कि हो सकता है कि जो शैवाल डायनोसोरों की मृत्यु के कारण थे वे जीवाशम के रूप में सुरक्षित रहने वाले नहीं थे।

शोधकर्ताओं ने यह भी बताया कि हो सकता है कि उन शैवालों ने मिट्टी में आविष स्रावित किया हो जो अंततः जानवरों के भोजन के साथ उनके शरीर में पहुँच गया हो। इसके अतिरिक्त आविष का जातियों के शरीर में पहुँचने का वायु–मार्ग भी हो सकता है।

डायनोसोरों के विलुप्तीकरण के इस नए विचार को पुष्ट करने के लिए अभी और अनुसंधान की आवश्यकता है। फिर भी शोधदल को इस प्रकार विचार और नई दिशा देने के लिए बधाई तो देनी ही होगी।

○○○

(2) जी एम गायों से मानव–दूध जैसा दूध

कहने–सुनने में तो कुछ अटपटा–सा लगता है कि जैवप्रौद्योगिकी के प्रयोग से यह लगभग संभव हो गया है कि अब (आनुवंशिकतः अपरिवर्तित जी.एम.) गायें मानव–दूध के समान गुण वाला दूध देने लगेगी। यह समाचार चाइना के 'चाइना डेली' नामक समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ है। समाचार है तो चौंकाने वाला पर सत्य है।

चीनी वैज्ञानिकों ने दावा किया है कि उन्होने 200 से अधिक गायों के एक झुंड को आनुवंशिकतः अपरिवर्तित गायों में परिवर्तित कर दिया है। ये जी एम गायें जो दूध देती हैं वह दूध गुणवत्ता में मानव–दूध के समान होता है।

एक तथ्य जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता है वह यह कि सामान्य गायों के दूध में उन दो पोषकों का अभाव होता है जो मानव–दूध में पाये जाते हैं। मानव दूध (माँ का दूध) बच्चों के प्रतिरक्षा के साथ साथ अन्य रोगों से भी सुरक्षा तंत्र प्रदान करता है। सामान्य दूध की तुलना मे जी एम गायों के दूध का स्वाद भी अच्छा होता है। वैज्ञानिक ली निंग के अनुसार गायों और बकरियों के दूध में यह गुण नहीं होता। आशा है कि अगले 10 वर्षों में ही जी एम गायों का दूध सुपर मार्केट में उपभोक्ताओं के लिए उपलब्ध हो जायेगा।

इस शोध से एक बड़ी उपलब्धि यह प्राप्त होगी कि जो माताएं किन्हीं अपरिहार्य कारणों से अपने नवजात शिशुओं को अपना दूध पिला सकने में सक्षम नहीं होंगी, उनके शिशु माँ के दूध से वंचित होने के बावजूद जी एम गायों के दूध से उसी प्रकार पोषित होंगे जैसे कि माँ के सामान्य दूध से होते। इस शोध के निश्चित रूप से दूरगामी परिणाम होंगे और इससे जन सामान्य के कल्याण की आशा की जानी चाहिए।

○○○

(3) आर्सेनिक भी है गहरे समुद्री जीवाणुओं का भोजन

सहसा विश्वास तो नहीं होता, लेकिन सच्चाई यह है कि मनुष्यों के लिए विषैला आर्सेनिक, समुद्र की गहराई में पाए जाने वाले जीवाणुओं का प्रमुख भोजन है। अनुसंधानकर्ताओं ने कैलिफोर्निया की झील की गहराइयों में एक ऐसी किस्म के जीवाणुओं को ढूँढ निकाला है जो आर्सेनिक विष पर जीवित रहते हैं। इस विस्मयकारी खोज से पृथ्वी और उसके परे अन्य प्रकार के विचित्र जीवों के अस्तित्व की खोज का मार्ग खुल गया है।

'नासा' के आर्थिक सहयोग से संचालित वाली इस शोध योजना से स्पष्ट हुआ है कि जीवन के लिए आवश्यक तत्व कार्बन, हाइड्रोजन, नाईट्रोजन, ऑक्सीजन, फॉस्फोरस और सल्फर हैं किन्तु जीवाणु न केवल आर्सेनिक पर जीवित रहते हैं वरन् वे अपनी वृद्धि के लिए इन तत्वों अपने को डी एन ए में और कोशिकाओं की झिल्लियों में शामिल कर लेते हैं।

एक और तथ्य जो प्रकट है वह यह कि यहाँ आर्सेनिक जीवों के लिए रचक खंडक की तरह प्रयुक्त होता है। शोधदल के एक सदस्य एरियेल ऐन्बर का कहना है – "हमारा यह विचार था कि जीवन के लिए प्रमुख 6 तत्वों की ही आवश्यकता होती है और इसके अपवाद नहीं हैं, किंतु यहाँ तो आर्सेनिक अपवाद हो सकता है।"

इस खोज की सूचना एक वैज्ञानिक फेलिसा वाल्फे सिमॉन द्वारा दी गई जो एरियल एन्बर के शोध दल के पूर्व विज्ञानी थे और "एरिजोना स्टेट यूनिवर्सिटी" के "स्कूल ऑफ अर्थ ऐंड स्पेस एक्सप्लोरेशन" से संबंद्ध थे।

○○○

(4) प्राचीनतम पक्षी जीवाश्म

चीन के एक अनुसंधानकर्ता ने यह दावा किया है कि उन्होने संसार की प्राचीनतम चिड़ियों में से एक–जिनफेंगोप्टेरिक्स एलीगैंस (Jinfengopteryx elegants) के जीवाश्म को ढूँढ निकाला है। यह जीवाश्म बीजिंग से 120 किलोमीटर उत्तर दिशा की ओर फेंगनिंग काउंटी में मिला था। चिड़िया के जीवाश्म के पूरे शरीर के साथ पंख जुडे हुए थे, सिर तिकोना था और चोंच छोटी थी किंतु चोंच के भीतर 36 दाँत थे खोजकर्ता जी किउइंग "चाइनीज एकेडेमी ऑफ जियोलौजिकज साइंसेज" के अंतर्गत भूविज्ञान संस्थान में रिसर्च फेलो हैं। जी और उनके सहयोगियों के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि जीवाश्म के ग्रीवा–कशेरुक (Cervical vertebrae) में 11 खंड और पुच्छीय कशेरुक (Caudal vertebrae) में 23 खंड हैं। पक्षी की पूछ (दूम) 27.3 सेंटीमीटर लंबी है अथवा यों कहे कि यह शरीर की लंबाई का लगभग 50 प्रतिशत इसकी पीछे के पैरों की लंबाई आगे के पैरों की लंबाई की तुलना में कुछ अधिक हैं।

ऐसा माना जाता था कि पक्षियों के प्राप्त जीवाश्मों में आर्किऑप्टेरिक्स (Archaeopteryx) पक्षी का जीवाश्म सबसे पुराना है किंतु इस नये जीवाश्म की खोज से अब यह सिद्ध हो चुका है कि जर्मनी 1861 में पाया गया आर्किऑप्टेरिक्स नहीं वरन् जिनफेंगोप्टेरिक्स इलीगैन्स इससे पुराना है। यह उत्तर मध्यजीवी (late mesozoic) काल का जीवाश्म है। इसकी टॉगें आर्किऑप्टेरिक्स से भिन्न है और इसकी चोंच लंबी और दांतों की संख्या अधिक होती है। इस प्रकार जी और सहयोगियों ने जिनफेंगोप्टेरिक्स के जीवाश्म में कुल 205 लक्षण बताए हैं। उन्होने यह भी इंगित किया है कि चीन और जर्मनी के दोनों के जीवाश्मों को देखने से ऐसा लगता है कि दोनों चिड़ियों में सहसंबंध है।

○○○

(5) खाएं या न खाएं

एक सूचना के अनुसार आगामी कुछ वर्षों में खाद्य पदार्थों के बाजार, आनुवशिकतः परिवर्तित (जेनेटिकली मॉडिफॉयड–जी एम) अनेक तरह के खाद्य पदार्थों से भरे होंगे। आम आदमियों के सामने प्रश्न यह होगा कि ऐसे पदार्थों को खाने के लिए खरीदें या न खरीदें?

उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर है दिल्ली की कृषि अनुंसधान संस्थान के राष्ट्रीय अनुसंधान केंद्र के पादप जैवप्रौद्योगिकी विभाग मे कार्यरत जुड़े प्रोफेसर के.सी. बंसल का कहना है कि जी एम फसलों की पहली विशेषता है यह है कि जी एम फसलों में पीड़क नाशियों के प्रति प्रतिरोधक्षमता विद्यमान होती है। इसलिए जी एम सब्जियाँ (बैंगन, टमाटर, गोभी आदि) पीड़कनाशियों एवं कीटनाशी रसायनों से मुक्त होंगी। दूसरी विशेषता यह है कि टमाटर जैसी सब्जियाँ और पपीते जैसे फल शीघ्र खराब हो जाते हैं इसलिए उन्हे 'फ्रिज' में रखना पड़ता है किंतु जी एम सब्जियों या फलों की ऐसी पराजीनी फसलें सफलतापूर्वक तैयार की जा चुकी हैं जो काफी दिनों तक खराब नहीं होती। इसी प्रकार एक टमाटर की पराजीनी फसल काफी पहले नैनी कृषि विश्वविद्यालय इलाहाबाद में तैयार की जा चुकी है। वहाँ के रसायन विभाग के अध्यक्ष प्रो० अशोक कुमार गुप्त (अवकाशप्राप्त) ने मुझे नमूने के तौर पर कुछ जी एम टमाटर दिए थे जो स्वाद में अच्छे थे, पर उनका छिलका कड़ा था और वे लगभग तीन सप्ताह तक कमरे के ताप पर यथावत् बने रहे।

जी एम सब्जियों और फलों की तीसरी विशेषता यह है कि पराजीनी टमाटर, बैंगन, गोभी आदि सब्जियाँ बाजारों में बिक्री के लिए अधिक दिनों तक उपलब्ध रहेंगी। ऐसे फल और सब्जियाँ रोगमुक्त तो होंगी ही, खरीदने के बाद 15–20 दिनों तक सुरक्षित भी रहेंगी।

पराजीनी फसलों में किस प्रकार पोषक तत्व बढ़ाए जाएंगें, इस पक्ष पर अनुसंधान जारी हैं। बीटाकैरोटीन के स्तर को बढ़ाने या लाइकोपीन के स्तर को बढ़ाने (जो टमाटर में लाल रंग के लिए उत्तरदायी होता है) की दिशा में भी यथेष्ट कार्य किया जा रहा है। लाइकोपीन कैंसर और अन्य रोगों के प्रति सबसे अच्छे एंटीऑक्सीडैन्ट का काम करता है और रोगों से बचाता है। चूँकि जी एम

खाद्य फसलें अधिक पैदावार देती हैं इसलिए फल और सब्जियों की कीमतों में भी कमी आने की संभावना है।

सब्जी या फलों के संबंध में एक समस्या यह होगी कि बाजार में किस प्रकार पराजीनी खाद्य पदार्थों (सब्जियों/फसलों) को सामान्य या गैरपराजीनी खाद्य पदार्थों से पहचाना जाए। पराजीनी खाद्य पदार्थों को नामांकित करने का विचार अभी भारत में प्रचलित नहीं है। इस संबंध में आण्विक विज्ञानी (मॉलिक्युलर साइंटिस्ट) डॉ० एस. एम.भार्गव का कहना है कि पराजीनी बैंगन को साधारण बैंगन से अलग करने में समस्या यह है कि प्राकृतिक बैंगन की 600 किस्में हैं और इस बात की अधिक संभावना है कि इसकी पहचान में बेचने वालों और खरीदारों– दोनों की कठिनाई का सामना करना होगा। स्मरण रहे, डॉ० एस.एम.भार्गव वही विज्ञानी हैं जिन्होने 1973 में 'जेनेटिक इंजीनियरिग' (आनुवंशिक अभिपांत्रिकी) शब्द गढ़ा था।

जी एम खाद्य पदार्थों का मानव शरीर पर क्या प्रभाव पड़ेगा इसकी भी जाँच अभी शेष है। दूसरे भारत में जी एम खाद्य पदार्थों को नियंत्रित अभी संभव नहीं हैं। डॉ. भार्गव का यह कहना है कि 'जी एम फूड' के विरोध में काफी प्रमाण हैं, इसलिए इस विषय में सावधानी की आवश्यकता है।

ऐसी विषम परिस्थिति में यह वैज्ञानिकों का कर्तव्य है कि जी एम खाद्य के गुण–दोषों का आकलन करके भारतीय उपभोक्तओं को इस विषय पर जागरूक बनाए कि वे जी एम खाद्य पदार्थों को खाएं या न खाएं। वैसे भारत जैसे देश में जहाँ लोग खाद्य पदार्थों में मिलावट की समस्या से पहले से ही जूझ रहे हैं और दुःखी हैं, जी एम खाद्य पदार्थों पर सहसा कैसे विश्वास कर लेंगे?

अतएव अच्छा होगा उपभोक्ता तब तक प्रतीक्षा करें जब तक यह सिद्ध न हो जाए कि जी एम खाद्य पदार्थों का शरीर पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

○○○

लेखक–परिचय

1. नवीनीत कुमार गुप्ता – परियोजना अधिकारी,
विज्ञान प्रसार,
कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र
नई दिल्ली . 16

2. प्रो० मुकुलचंद पांडेय – 353 त्रिवेणीनगर–2,
लखनऊ – 226020

3. डॉ. जगनारायण – ईशान स्टूडियो, दुकान नं. 20,
विश्वनाथ मंदिर, काशी हिंदू विश्वविद्यालय,
वाराणसी – 221005

4. डॉ. जितेंद्र कुमार सिंह – सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग,
राजस्थान केंद्रीय विश्वविद्यालय
बांदरसिंदरी, किशनगढ (अजमेर)

5. प्रो० राजन कुमार तिवारी – सहायक प्राध्यापक,
आर. बी. एस. कालेज ऑफ इंजिनियरिंग एंड
टेक्नोलोजी, जमशेदपुर, झारखंड

6. डॉ० दीपक कोहली – 5/104, विपुल खंड
गोमती नगर, लखनऊ – 226010
(उ.प्र.)

7. मधु ज्योत्सना – चित्रकला विभाग,
धीरेन्द्र महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
वाराणसी (उ.प्र.)

8. डॉ० नरेश कुमार – पूर्व निदेशक
जे–235 पटेल नगर,
गाजियाबाद (उ.प्र.) – 201001

9. डॉ० वीरेंद्र कुमार – सस्य विज्ञान संभाग,
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान पूसा,
दिल्ली – 110012

10. डॉ. प्रेमचंद श्रीवास्तव	–	अनुकम्पा वार्ड 2 सी, 115/6 झाँसी त्रिवेणीपुरम इलाहाबाद 211019 (उ.प्र.)
11. डॉ. एन. के बौहरा	–	प्लाट नं. 389, गली नं. 10, मिल्कमेन कालोनी, पाल रोड जोधपुर (राजस्थान)

हमारे प्रकाशन

शब्द-संग्रह

भौतिकी	
भौतिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी)	119.00
अंतरिक्ष विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	45.00
इलेक्ट्रॉनिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	22.00
तरल यांत्रिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	10.00
भौतिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	700.00
गृह विज्ञान	
गृह विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी)	60.00
कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी	
कंप्यूटर विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	57.00
कंप्यूटर विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	102.00
सूचना प्रौद्योगिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी)	231.00
रसायन विज्ञान	
रसायन शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी)	592.00
इस्पात एवं अलौह धातुकर्म शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	55.00
उच्चतर रसायन परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	17.00
धातुकर्म परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	278.00
रसायन (कार्बनिक) परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	25.00
रक्षा	
समेकित रक्षा शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	284.00
गुणता नियंत्रण	
गुणता नियंत्रण शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी)	38.00
भाषा विज्ञान	
भाषा विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी)	113.00
भाषा विज्ञान परिभाषा कोश खंड-1 (अंग्रेजी-हिंदी)	89.00
भाषा विज्ञान परिभाषा कोश खंड-2 (अंग्रेजी-हिंदी)	59.00
जीव विज्ञान	
कोशिका जैविकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी)	62.00
पर्यावरण विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी)	381.00
प्राणिविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	216.00
सूक्ष्मजैविकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	45.00
कोशिका जैविकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	121.00
लोक प्रशासन	
लोक प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	52.00

गणित

गणित शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी)	143.00
गणित परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	203.00
सांख्यिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	18.00

भूगोल

भूगोल शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी)	200.00
भूगोल परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	10.00
मानव भूगोल परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	18.00
मानचित्र विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	231.00

अनुप्रयुक्त विज्ञान

प्राकृतिक विपदा शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	17.00
जलवायु विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	131.00
वानिकी शब्द-संग्रह	440.00

कृषि

रेशम विज्ञान शब्द-संग्रह	50.00
कृषि कीटविज्ञान परिभाषा कोश	125.00
सूत्रकृषि विज्ञान परिभाषा कोश	125.00
मृदा विज्ञान परिभाषा कोश	77.00

इंजीनियरी

रासायनिक इंजीनियरी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी)	51.00
विद्युत् इंजीनियरी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	81.00
यांत्रिक इंजीनियरी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	94.00
तरल यांत्रिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	10.00

वनस्पतिविज्ञान

वनस्पतिविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी)	86.00
वनस्पतिविज्ञान परिभाषा कोश	75.00
पादप रोग विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	75.00
पादप आनुवंशिकी परिभाषा कोश	75.00
पुरावनस्पति विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	80.00

दर्शनशास्त्र

भारतीय दर्शन परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) खंड-1	151.00
भारतीय दर्शन परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) खंड-2	124.00
भारतीय दर्शन परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) खंड-3	136.00
दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	198.00

पुस्तकालय विज्ञान

पुस्तकालय विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	49.00

पत्रकारिता

पत्रकारिता परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	87.00
पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	12.25

पुरातत्व विज्ञान

पुरातत्व विज्ञान शब्दावली	509.00
पुरातत्व विज्ञान परिभाषा कोश	

कला

पाश्चात्य संगीत परिभाषा कोश	343.00
प्रबंध विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी)	170.00

अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र परिभाषा कोश	117.00
अर्थमिति परिभाषा कोश	17.65

अन्य

अंतरराष्ट्रीय विधि परिभाषा कोश	344.00
नाट्यशास्त्र, फिल्म एवं टेलीविजन परिभाषा कोश	
नाट्यशास्त्र, फिल्म एवं टेलीविजन शब्दावली	75.00

संदर्भ-ग्रंथ

ऐतिहासिक नगर	195.00
प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक नगर	109.00
समुद्री यात्राएँ	79.00
विश्व दर्शन	53.00
अपशिष्ट प्रबंधन	53.00
कोयला (एक परिचय)	425.00
रत्न विज्ञान (एक परिचय)	115.00
वाहितमल एवं आपंक : उपयोग एवं प्रबंधन	40.00
पर्यावरणीय प्रदूषण : नियंत्रण तथा प्रबंधन	23.25
भारत में भैंस उत्पादन एवं प्रबंधन	540.00
भारत में ऊसर भूमि एवं फसलोत्पादन	559.00
2 दूरिक एवं 2 मानकित समष्टियों में संपात एवं स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन	68.00
भारत में प्याज एवं लहसुन की खेती	82.00
पशुओं से मनुष्यों में होने वाले रोग	60.00
ठोस पदार्थ यांत्रिकी	995.00
वैज्ञानिक शब्दावली : अनुवाद एवं मौलिक लेखन	34.00
मृदा-उर्वरता	410.00
ऊर्जा-संसाधन और संरक्षण	105.00
पशुओं के कवकीय रोग, उनका उपचार एवं नियंत्रण	93.00
पराज्यामितीय फलन	90.00
सामाजिक एवं प्रक्षेत्र वानिकी	54.00
विश्व के प्रमुख धर्म	118.00
पृथ्वी : उद्भव और विकास	470.00
पृथ्वी से पुरातत्व	40.00

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी	90.00
द्रवचालित मशीन	66.50
मैग्नेसाइट : एक भूवैज्ञानिक अध्ययन	214.00
मृदा एवं पादप पोषण	367.00
नलकूप एवं भौमजल अभियांत्रिकी	398.00
विश्व के प्रमुख धर्मों में धर्मसमभाव की अवधारणा : एक तुलनात्मक अध्ययन	490.00
पादपों में कीट प्रतिरोध और समेकित कीट प्रबंधन	367.00
स्वतंत्रता-पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन	176.00
भेड़ बकरियों के रोग एवं उनका नियंत्रण	343.00
भविष्य की आशा : हिंद महासागर	154.00
भारतीय कृषि का विकास	155.00
विकास मनोविज्ञान भाग-1	40.00
विकास मनोविज्ञान भाग-2	30.00
कृषिजन्य दुर्घटनाएँ	25.00
इलेक्ट्रॉनिक मापन	31.00
वनस्पतिविज्ञान पाठमाला	16.00
इस्पात परिचय	146.00
जैव-प्रौद्योगिकी : अनुसंधान एवं विकास	134.00
विश्व के प्रमुख दार्शनिक	433.00
प्राकृतिक खेती	167.00
हिंदी विज्ञान पत्रकारिता : कल, आज और कल	167.00
मानसून पवन : भारतीय जलवायु का आधार	112.00
हिंदी में स्वतंत्रता परवर्ती विज्ञान लेखन	280.00

ग्राहक फार्म

सेवा में :
अध्यक्ष,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली-110066

महोदय,

कृपया मुझे **"विज्ञान गरिमा सिंधु"** (त्रैमसिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए ..... से ग्राहक बना लीजिए। मैं पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क ..... रुपये, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के पक्ष में, नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. ..... दिनाकं ..... दवारा भोज रहा/रही हूं। कृपया पावती भिजवाएं।

नाम .....
पूरा पता .....

भवदीय

(हस्ताक्षर)

सदस्यता शुल्क	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
व्यक्तियों / संस्थाओं के लिए प्रति कापी	₹. 14/–	पौंड 1.64	पौंड 1.64
वार्षिक शुल्क	₹. 50/–	पौंड 5.83	डालर 18.
छात्रों के लिए			
प्रति कॉपी	₹. 8/–	पौंड 0.93	डालर 10.
वार्षिक शुल्क	₹. 30/–	पौंड 3.50	डालर 2.

डिमांड ड्राफ्ट "अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम पूरा पता भी लिखें। ड्राफ्ट 'एकांउट पेई' होना चाहिए। यदि ग्राहक विद्यार्थी है तो कृपया निम्न प्रमाण–पत्र भी संलग्न करें:

कृपया डिमांड ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम और पता लिखें।

विद्यार्थी–ग्राहक प्रमाण पत्र

पमाणित किया जाता है कि कुमारी/श्रीमती/श्री..... इस विद्यालय/महाविद्यालय/विश्वविदायल के ..... विभाग का छात्र/की छात्रा है।

(हस्ताक्षर)

(प्राचार्य / विभागाध्यक्ष)
(मोहर)

बिक्री संबंधी नियम

1. आयोग के प्रकाशन, आयोग के बिक्री पटल तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के विभिन्न बिक्री पटलों पर उपलब्ध रहते हैं।
2. सभी प्रकाशनों की खरीद पर 25 प्रतिशत की छूट दी जाती है। कुछ पुराने प्रकाशनों पर 75 प्रतिशत तक भी छूट दी जाती है।
3. सभी तरह के आदेशों की प्राप्ति पर आयोग द्वारा इनवाइस जारी किया जाता है। अपेक्षित धनराशि का बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर अध्यक्ष, वैज्ञानिक शब्दावली आयोग, नई दिल्ली (Chairman, C.S.T.T., New Delhi) के नाम देय होना चाहिए। चेक स्वीकार्य नहीं होगा। अपेक्षित धनराशि प्राप्त होने के पश्चात् ही पुस्तकें भेजी जाती हैं।
4. चार किलोग्राम वजन तक की सभी पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल से भेजी जाती हैं। पुस्तकें भेजने पर पैकिंग तथा फॉर्वर्डिंग चार्ज नहीं लिया जाता है।
5. चार किलोग्राम से अधिक की सभी पुस्तकें सड़क परिवहन से भेजी जाती हैं तथा इन पर आने वाले सभी परिवहन-व्ययों का भुगतान मांगकर्ता द्वारा ही किया जाएगा।
6. पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजने के बाद आयोग द्वारा मूल बिल्टी तत्काल पंजीकृत डाक से मांगकर्ता को भेज दी जाती है। यदि निर्धारित अवधि में पुस्तकों को ट्रांसपोर्ट कार्यालय से प्राप्त न किया गया तो उस स्थिति में लगने वाले सभी तरह के अतिरिक्त प्रभारों का भुगतान मांगकर्ता को ही करना होगा।
7. सड़क परिवहन से भेजी जाने वाली पुस्तकों पर न्यूनतम वजन का प्रभार अवश्य लगता है जो प्रत्येक दूरी के लिए अलग-अलग होता है। यदि संबंधित संस्था चाहे तो आयोग में सीधे ही भुगतान करके स्वयं पुस्तकें प्राप्त कर सकती है।
8. दिल्ली तथा उसके नजदीक के क्षेत्रों के आदेशों की पूर्ति डाक द्वारा संभव नहीं होगी। संबंधित संस्था को आयोग के बिक्री एकक में आवश्यक भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त करनी होंगी।
9. पुस्तकों की पैकिंग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मांगकर्ता को सभी पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त हों। पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल/रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती हैं। यदि परिवहन में पुस्तकों को किसी भी तरह का नुकसान पहुँचता है तो उसका दायित्व आयोग पर नहीं होगा।
10. सामान्यत: बिल कटने के बाद आदेश में बदलाव या पुस्तकों की वापसी नहीं होगी। यदि क्रय राशि का समायोजन आवश्यक होगा तो राशि वापस नहीं की जाएगी। इस स्थिति में अन्य पुस्तकें ही दी जाएंगी।
11. प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची -
    1. किताब महल, प्रकाशन विभाग
       बाबा खड्ग सिंह मार्ग, स्टेट एंपोरियम बिल्डिंग
       यूनिट नं. 21, नई दिल्ली-110001
    2. बिक्री पटल, प्रकाशन विभाग
       उद्योग भवन, गेट नं.-3, नई दिल्ली-110001
    3. बिक्री पटल, प्रकाशन विभाग
       सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स, न्यू मेरीन लाइन्स
       मुंबई-400020
    4. बिक्री पटल, प्रकाशन विभाग
       दिल्ली उच्च न्यायालय, (लॉयर चैंबर)
       नई दिल्ली-110003
    5. पुस्तक डिपो, प्रकाशन विभाग
       के. एस. राय मार्ग, कोलकाता-700001

12. अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -
    प्रभारी अधिकारी (बिक्री)
    वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
    (मानव संसाधन विकास मंत्रालय)
    पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम
    नई दिल्ली-110066

❑❑❑

प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची

प्रकाशन नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय के पीछे,
सिविल लाइन्स ,
नई दिल्ली–110054

किताब महल,
प्रकाशन विभाग, बाबा खड्ग सिंह मार्ग,
स्टेट एंपोरियम बिल्डिंग,
यूनिट नं. 21, नई दिल्ली–110001

पुस्तक डिपो
प्रकाशन विभाग, के. एस. राय मार्ग,
कोलकाता–700001

बिक्री काउंटर
प्रकाशन विभाग,
सी. जी. ओ. कॉम्पलेक्स,
न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई – 400020

बिक्री काउंटर
प्रकाशन विभाग, उद्योग भवन,
गेट नं. 3, नई दिल्ली–110001

बिक्री काउंटर
प्रकाशन विभाग,
दिल्ली उच्च न्यायालय, लॉयर चैंबर,
नई दिल्ली–110003

बिक्री पटल,
प्रकाशन विभाग, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स,
न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई–400020

बिक्री काउंटर,
प्रकाशन विभाग,
संघ लोक सेवा आयोग,
धौलपुर हाउस, नई दिल्ली–110001

GMGIPMRND—2588HRD(CRC)—06.09.2016.

© भारत सरकार
प्रकाशन-नियंत्रक

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित तथा
महाप्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, मिन्टो रोड, नई दिल्ली-110002 द्वारा मुद्रित।